प्रथम अध्याय

साहित्य और सिनेमा : स्वरूप एवं महत्व

1.0 भूमिका

1.1 साहित्य : स्वरूप विवेचन

1.1.1 साहित्य की परिभाषा

1.1.2 साहित्य के तत्त्व

1.1.3 साहित्य के भेद

1.2 सिनेमा : स्वरूप विवेचन

1.2.1 सिनेमा की परिभाषा

1.2.2 फिल्मों के प्रकार

1.2.2.1 फीचर फिल्म

1.2.2.2 फीचर फिल्म के प्रकार

1.2.2.3 हिंदी फिचर फिल्म के प्रकार

1.2.2.4 डॉक्यूमेंट्री फिल्म

1.2.2.5 टेलीफिल्म

1.2.2.6 एनिमेशन (गतिकला) और कार्टून फिल्म

1.2.2.7 विज्ञापन फिल्म

1.3 सिनेमा में अंतर्निहित तत्व

1.3.1 सिनेमा का तकनीकी पक्ष

1.3.1.1 फिल्म निर्माता (फिल्म प्रोड्यूसर)

1.3.1.2 फिल्म निर्देशक (फिल्म डायरेक्टर)

1.3.1.3 कला निर्देशक (आर्ट डायरेक्टर)

1.3.1.4 संगीत निर्देशक (म्युझिक डायरेक्टर)

1.3.1.5 नृत्य निर्देशक (कोरिओग्राफर)

1.3.1.6 एक्शन डायरेक्टर

1.3.1.7 कैमरामन (सिनेमेटोग्राफर)

1.3.1.8 प्रोडक्शन मैनेजर

1.3.1.9 फिल्म विषय पर शोध कार्य

1.3.1.10 फिल्म कलाकारों का चयन

1.3.1.11 फिल्म शूटिंग

1.3.1.12 लाइट व्यवस्था

1.3.1.13 सेट डिझायनिंग

1.3.1.14 मेकअप मैन

1.3.1.15 वेशभूषा (कॉस्ट्यूम)

1.3.1.16 केश-विन्यास

1.3.1.17 स्टिल फोटोग्राफी

1.3.1.18 ध्वनिमुद्रण (साउंड रेकॉर्डिंग)

1.3.1.19 डबिंग

1.3.1.20 साउंड इफेक्ट

1.3.1.21 फिल्म संपादन (फिल्म एडिटिंग)

1.3.1.22 फिल्म वितरण (फिल्म डिस्ट्रीब्यूशन)

1.3.2 सिनेमा का कला पक्ष

1.3.2.1 कथा - पटकथा

1.3.2.2 संवाद (डायलॉग)

1.3.2.3 स्क्रिनप्ले

1.3.2.4 गीत

1.3.2.5 संगीत

1.3.2.6 अभिनय

1.3.2.7 नृत्य

1.4 साहित्य और सिनेमा का महत्व

1.4.1 साहित्य का महत्व

1.4.2 साहित्य और समाज

1.4.3 सिनेमा का महत्व

1.4.3.1 सिनेमा और समाज

1.4.3.2 साहित्य, सिनेमा और समाज

1.5 निष्कर्ष

प्रथम अध्याय

साहित्य और सिनेमा : स्वरूप एवं महत्व

1.0 भूमिका :-

साहित्य और समाज का संबंध अभिन्न है । समाज के बिना साहित्य सृजन असम्भव है, ठीक उसी प्रकार साहित्य के बिना समाज भी कोई महत्व नहीं रखता । साहित्य एक बहुत बड़ा सशक्त माध्यम है उसी तरह फिल्म भी बहुत प्रभावशाली और सशक्त माध्यम है । दोनों कला के ही दो अलग-अलग स्वरूप है ।साहित्य शब्दों पर आश्रित हैं तो फिल्म दृश्य-श्रव्य माध्यम है । एक साहित्यकार को केवल कागज और कलम की जरुरत होती है, जबकि फिल्म निर्देशक को फिल्म के कला पक्ष के साथ-साथ उसका तकनीकी पक्ष भी देखना पडता है । फिल्म निर्माण की जोखिम भरी प्रक्रिया से उसे गुजरना पडता है । ‘‘जो भी हो साहित्य और सिनेमा कला और मनोरंजन जगत के दो महत्वपूर्ण माध्यम है । साहित्यकार और दिग्दर्शक समाज में ही जन्म लेते है, समाज में ही पलते है और समाज की आसपास की परिस्थितियों से प्रभावित होकर, व्यथित होकर अपना-अपना सर्जन करते हैं । साहित्यकार और दिग्दर्शक दोनों का धर्म है सामाजिक हितों की रक्षा करना । साहित्य और सिनेमा में जीवन उपयोगी उपदेश देने की शक्ति होती है ।’’[1]

इस अध्याय में हम साहित्य और सिनेमा के स्वरूप एवं महत्व को निम्न रूप से समझेंगे -

1.1 साहित्य : स्वरूप विवेचन :-

साहित्य की परिभाषा देने का प्रयत्न शताब्दियों से चला आ रहा है । साहित्य के कई विद्वानों ने उसे शब्दों में बाँधने का प्रयास भी किया । मूलतः ‘साहित्य’ शब्द संस्कृत भाषा का है । ‘साहित्य’ शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के ‘सहित’ शब्द में यत् प्रत्यय के योग से हुई है । ‘‘साहित्य = सहित + यत्, साहित्य का अर्थ है शब्द और अर्थ का यथावत सहभाव

अर्थात 'साथ होना' । इस प्रकार सार्थक शब्द मात्र का नाम साहित्य है ।''[2] यह तो ठीक है कि साहित्य से 'सहभाव' ध्वनित होता है किन्तु सहभाव किसका ? यह सहभाव शब्द और अर्थ का ही हो, ऐसा संकेत इस शब्द में कही नहीं मिलता । कुछ विद्वानों ने 'साहित्य' में से 'सहित' को अलग करते हुए हित-कारक रचना को साहित्य बताया है, लेकिन यह व्याख्या भी सर्वांश में सत्य सिध्द नहीं होती । ''एक अच्छे सुन्दर चिकने पत्र पर रंग-बिरंगे शब्दों में मुद्रित वह रचना भी जिसकी एक ओर 'अशोक चक्र' तथा दूसरी ओर बैंक का नाम, गवर्नर के हस्ताक्षर, देय राशी व क्रम संख्या आदि अंकित है, किसी दरिद्रनारायण के भक्त के लिए कम हितकारक नहीं होती, किन्तु इसी से क्या हम इसे 'साहित्य' की संज्ञा दे सकते है ।''[3] वस्तुतः इन व्याख्याओं का साहित्य के अर्थ से सीधा संबंध नहीं है ।

कहा जाता है कि 'साहित्य' शब्द का प्रचलन इस अर्थ में सातवीं-आठवीं शती से हुआ है । इससे पहले संस्कृत में साहित्य के स्थानपर 'काव्य' शब्द का ही प्रयोग मिलता है । जब संस्कृत में 'काव्य' और 'साहित्य' दोनों शब्दों का प्रयोग एक ही अर्थ में होने लगा तो आगे चलकर काव्य का अर्थ संकुचित हो गया वह केवल कविता तक सीमित रह गया जबकि 'साहित्य' का प्रयोग व्यापक रूप में कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध, जीवनी, संस्मरण, आलोचना आदि सभी विधाओं के लिए होने लगा । आधुनिक युग में 'साहित्य' शब्द का प्रचलन अंग्रेजी के 'लिटरेचर' शब्द की भाँति दो अर्थों में होता है । व्यापक अर्थ में वह समस्त लिखित एवं मौखिक रचनाओं के अर्थ में प्रयुक्त होता है जबकि संकुचित अर्थ में वह 'काव्य' के पर्याय के रूप में गृहीत होता है । दूसरे शब्दों में एक ओर वह समस्त प्रकार के ग्रंथ समूह को सूचित करता है तो दूसरी ओर वह एक विशेष कोटि की रचनाओं तक ही सीमित है । ''पाश्चात्य विद्वानों ने इन दोनों का अंतर स्पष्ट करने के लिए एक को 'ज्ञान का साहित्य' कहा है, तो दूसरे वर्ग की रचनाओं को 'भावना का साहित्य' की संज्ञा दी है । प्रसिध्द विद्वान डी क्विन्सी ने दोनों की तुलना करते हुए लिखा है कि जहाँ ज्ञान के साहित्य का लक्ष्य सिखाना होता है, वहाँ भावना के साहित्य का लक्ष्य भावनाओं को जागृत करना होता है, एक में तथ्यों और उपदेशों की प्रधानता होती है जबकि दूसरे में कला और सौंदर्य की अभिव्यक्ति होती है ।''[4] इस प्रकार भावना का साहित्य ही गद्य और पद्य में

लिखि हुई सभी प्रकार की कलापूर्ण रचनाओं कविता, कहानी, उपन्यास, निबन्ध, नाटक आदि से संबंधित है ।

1.1.1 साहित्य की परिभाषा :-

साहित्य का स्वरूप स्पष्ट करने के लिए संस्कृत, हिंदी और पाश्चात्य विद्वानों ने साहित्य की जो परिभाषाएँ प्रस्तुत की है उसे देखना होगा । कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाओं को ही हम यहाँ प्रस्तुत करेंगे । प्रस्तुत परिभाषाएँ डॉ.भगीरथ मिश्र के 'काव्यशास्त्र' ग्रंथ से यहाँ ली गई है ।

अ) संस्कृत विद्वानों द्वारा साहित्य की परिभाषा :

1) अग्निपुराण :

''संक्षेपाद्वाक्यमिष्टार्थव्यवच्छिना पदावली ।
काव्यं स्फुरदलंकार गुणवद्दोषवर्जितम् ।।''

अर्थात् - ''संक्षेप में इष्ट अर्थ को प्रकट करनेवाली पदावली से युक्त ऐसा वाक्य काव्य है जिसमें अलंकार प्रकट हो और जो दोष रहित और गुणयुक्त हो ।''

2) भामह :-

''शब्दार्थों साहितौ काव्यम्''

अर्थात् - ''शब्द और अर्थ का संयोग काव्य है ।'' यह परिभाषा अत्यंत व्यापक है, क्योंकि इसके क्षेत्र में काव्य के अतिरिक्त शास्त्र, इतिहास, वार्तालाप आदि सभी आ जाते हैं । इस कारण इसमें अतिव्याप्ती का दोष है ।

3) आ.विश्वनाथ :-

''वाक्य रसात्मकं काव्यम्''

अर्थात् - ''रसयुक्त वाक्य काव्य है ।''

4) पंडितराज जगन्नाथ :-

''रमणीयार्थप्रतिपादक : शब्द : काव्यम्'

अर्थात् - ''रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करनेवाला शब्द काव्य है ।''

5) दण्डी :-

''काव्य शोभा करान धर्मान अलंकारान प्रचक्षते ।''

अर्थात् - ''काव्य को शोभा प्रदान करनेवाले धर्म अलंकार हुए ।''

6) वामन :-

''रीतिरात्माकाव्यस्य''

अर्थात् - ''काव्य की आत्मा रीति है।''

7) आनंदवर्ध्दन :-

''काव्यास्यात्माध्वनि''

अर्थात् - ''ध्वनि ही काव्य की आत्मा है।''

8) कुंतक :-

''वक्रोक्तिःकाव्यजीवितम्''

अर्थात् - ''काव्य का जीवन वक्रोक्ति है ।''

कुलमिलाकर कहा जा सकता है कि - ''शब्द और अर्थ अथवा दोनों की रमणीयता से युक्त वाक्य रचना को काव्य कहते है ।''

आ) हिंदी विद्वानों द्वारा साहित्य की परिभाषा :-

1) आ.रामचन्द्र शुक्ल -

''कविता जीवन और जगत की अभिव्यक्ति है ।''

2) आ.महावीरप्रसाद द्विवेदी -

“अन्तःकरण की वत्तियों के चित्र का नाम कविता है।”

3) जयशंकर प्रसाद -

“काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है ।”

4) सुमित्रानंदन पंत -

“कविता हमारे परिपूर्ण क्षणों की वाणी है ।”

इ) अंग्रेजी विद्वानों द्वारा साहित्य की परिभाषा -

1) कॉलरिज -

"Poetry is the best words in their best order."

अर्थात् - “सर्वोत्तम शब्द अपने सर्वोत्तम क्रम में कविता होती है ।”

2) वर्डसवर्थ -

"Poetry is the spontaneous overflow of powerful feelings."

अर्थात् - “कविता प्रबल अनुभूतियों का सहज उद्रेक है ।”

3) मैथ्यू आरनॉल्ड -

"Poetry is at bottom a criticism of life."

अर्थात् - “कविता मूलरूप में जीवन की आलोचना है ।”

4) चेंबर्स डिक्शनरी -

"Poetry is the art of expressing in melodious words, thoughts which are the creations of imagination and feelings."

अर्थात् - “कल्पना और अनुभूति से उत्पन्न विचारों को मधुर शब्दों में अभिव्यक्त करने की कला कविता है ।”

इस प्रकार संस्कृत, हिंदी एवं अंग्रेजी विद्वानो द्वारा अलग - अलग परिभाषाएँ प्रस्तुत की गई है जिनसे साहित्य को समझना कठिन है । वस्तुतः ये परिभाषाएँ अव्याप्ती या अतिव्याप्ती दोष से युक्त है । इसके अतिरिक्त इन्होंने साहित्य क्या है ? इसका उत्तर देने के स्थानपर काव्य और कवि काव्य या पाठक तथा काव्य और जीवन के संबंध को सूचित किया है जिससे मूल प्रश्न का उत्तर नहीं मिलता । ये परिभाषाएँ साहित्य के विभिन्न दृष्टिकोणों एवं पक्षों को सूचित करती हैं ।अतः इनमें से किसी भी परिभाषा को सर्वांगीण नहीं कहा जा सकता । इस कारण साहित्य के स्वरूप स्पष्टीकरण के लिए केवल परिभाषा का निर्धारण पर्याप्त नहीं है, उसके तत्वों को समझना भी जरुरी है ।

1.1.2 साहित्य के तत्त्व -

साहित्य के मुख्यतः चार तत्व निर्धारित किए गए है - 1) भाव 2) कल्पना 3) बुध्दि 4) शैली ।

1) भाव -

साहित्य में सर्वप्रमुख तत्व 'भाव' ही है ।भाव - तत्व साहित्य में सर्वाधिक प्रभाव उत्पन्न करनेवाला होता है । 'भाव' को साहित्य की आत्मा कहा जाता है । 'भाव' काव्य का बड़ा व्यापक तत्व है । यह पाठक और श्रोता का भी संस्कार करता है । भाव को साकार रूप देनेवाले शब्द, अर्थ और कल्पना है । बिना किसी उक्ति चमत्कार या बौध्दिक प्रयत्न के भी भाव-तत्त्व का गहरा प्रभाव साहित्य में रहता है । साहित्य का सर्व प्रमुख लक्षण रागात्मकता है जिसके लिए भावों का चित्रण अपेक्षित है । साहित्य में सूक्ष्म भावनाओं का अधिक महत्व है। साहित्य का लक्ष्य पाठक के हृदय को भावनाओं से आप्लावित कर देना होता है, इस लक्ष्य की पूर्ति भावों के चित्रण द्वारा सम्पन्न होती है।

2) कल्पना -

साहित्य का दूसरा तत्व 'कल्पना' है । साहित्य में भावनाओं का चित्रण कल्पनाशक्ति के प्रयोग द्वारा ही सम्पन्न होता है । रूप-सृष्टि करनेवाली शक्ति कल्पना है। जीवन के विविध

दृश्यों को सामने प्रस्तुत करना कल्पना का ही काम है । कवि अपनी कल्पना के बल पर दूसरों के सुख-दुःख और दूसरो की अनुभूतियों का चित्रण इस प्रकार कर देता है कि वह हमारा सुख-दुःख बन जाता है । कवि अप्रत्यक्ष घटना को प्रत्यक्ष रूप में, अतित की घटना को वर्तमान में और सूक्ष्म भाव को स्थूल रूप में प्रस्तुत कर देता है । इसका श्रेय उसकी कल्पना - शक्ति को ही है । एक साधारण से साधारण घटना को भी कवि कल्पना के रंग में रंगकर ऐसा भव्य रूप प्रदान कर देता है कि वह हमारे हृदय को आकर्षित कर लेता है ।

काव्य में सौंदर्य और चमत्कार की सृष्टि भी कल्पना के द्वारा ही की जाती है । ''न जाने हमारे कितने कवियों ने नारी की सूक्ष्म छवि के अंकन में अपनी अद्भूत कल्पना का परिचय दिया है । सुंदरियों के सामान्य रूप-वैभव को उन्होंने चन्द्र की जोत्स्ना दामिनी की चमक, रजनी की शीतलता, ओस की तरलता, पुष्प की प्रफुल्लता आदि से समन्वित करके अलौकिकता प्रदान कर दी है । यहीं नहीं, संसार के असंख्य निर्जिव पदार्थों और प्रकृति के अगणित चेतना विहिन रूपों को भी कवि की कल्पना ने सजीवता और चेतना प्रदान कर दी है । धरती की गोद में कल-कल प्रवाहिनी सरिता को कालिदास की कल्पना ने एक ऐसी मद-विह्वला रमणी का रूप प्रदान कर दिया जिसके अगाध जलरूपी नितम्बों से लहरों के रूप में उद्वेलित वस्त्र बार बार खिसका जा रहा था! भर्तृहरि की कल्पना नारी के उरोज द्वय में एक ऐसी दुर्गम घाटी की रचना कर लेती है, जहाँ समररूपी तस्कर विराजमान है और जो मनरूपी पथिकों का सर्वस्व लूट लेता है । और आगे चलकर केशव, बिहारी, पद्माकर, भारतेन्दु, प्रसाद, पंत, महादेवी की कल्पना जो चमत्कार दिखाती है उसका तो कहना ही क्या ! वस्तुतः प्रत्येक युग और प्रत्येक भाषा का साहित्य कल्पना शक्ति की अपूर्व क्षमता, अद्भुत वैभव और अलौकिक चमत्कार की कहानियों से भरा पडा है ।''[5] साहित्य जगत का सम्राट 'भाव' है और 'कल्पना' उसकी दासी है । साहित्य में कल्पना का उपयोग भावनाओं के चित्रण और विकास के लिए ही होना चाहिए, अन्यथा वह महत्वहीन हो जाती है ।

3) बुध्दि तत्व -

साहित्य का तिसरा तत्व ‘बुध्दि’ है । बुध्दि का सम्बन्ध तथ्यों, विचारों और सिध्दान्तों से है । साहित्य में किसी-न-किसी मात्रा में तथ्यों, विचारों और सिध्दान्तों का भी समावेश किया जाता है । बुध्दि तत्व का महत्व इस बात में है कि भाव, कल्पना आदि का ठीक संयोजन और शब्द का प्रयोग औचित्यपूर्ण हो । औचित्य के बिना विश्वसनीयता और प्रभाव नष्ट हो जाते हैं । साहित्य में वस्तुओं और घटनाओं का चित्रण उनके उचित रूप में ही किया जाता है । कथा-वस्तु की सुक्ष्म रेखाओं के निर्माण के लिए घटनाओं की शृंखला को मिलाने के लिए और कार्य के अनुरूप फल दिखाने के लिए प्रत्येक प्रबन्धकार, कहानीकार और उपन्यासकार को बुध्दि का प्रयोग करना पडता है । अतः न्युनाधिक मात्रा में साहित्य में बुध्दितत्व भी सर्वत्र विद्यमान रहता है ।

यह प्रश्न भी उपस्थित होता है कि साहित्य में विचारों को कहा तक स्थान देना चाहिए। इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि विचारों का चित्रण उसी सीमा तक होना चाहिए, जहाँ तक वे रचना के भाव सौंदर्य में बाधक न हों । साहित्य की आत्मा ‘भाव’ है, अतः उसे किसी भी स्थिति में ठेस नहीं लगनी चाहिए ।

4) शैली तत्व -

साहित्य का चौथा तत्व ‘शैली’ है । कवि या साहित्यकार जिस भाषा, जिस रूप या जिस ढंग से अपने भावों, विचारों को व्यक्त करता है, वही ‘शैली’ है । शैली के अंतर्गत भाषा, शब्द-चयन, अलंकारो का प्रयोग, छंदो का उपयोग, काव्य-रूप आदि का समावेश किया जाता है । साहित्य के भाव, कल्पना, बुध्दि यह तीन तत्व यदि उसके प्राण है तो ‘शैली’ उसका शरीर है । जैसे बिना शरीर के प्राण नहीं टिक सकते वैसे ही बिना भाषा आदि के साहित्य का निर्माण नहीं हो सकता । साहित्य का भाव पक्ष उत्कृष्ट हो तो साधारण शैली से भी काम चल सकता है, लेकिन सर्वोत्कृष्ट साहित्य वह है जिसका भाव और शैली पक्ष प्रौढ़ हो । पाश्चात्य विद्वानों ने शैली का सम्बन्ध कवि के व्यक्तित्व से माना है ।

इस प्रकार साहित्य की विविध विद्वानों द्वारा प्रस्तुत परिभाषाएँ और साहित्य के तत्वों की जानकारी के बाद हम कह सकते है कि साहित्य विविध रूपों और विविध नामों से विभूषित है । उपर्युक्त परिभाषाओं एवं तत्वों का ज्ञान भी साहित्य के स्वरूप को अंशिक रूप में ही समझने में सहायता देता है । ''साहित्य की आत्मा का तो पूर्ण साक्षात्कार तभी सम्भव है जबकि हमारे हृदय में भावनाओं और अनुभूतियों का प्रकाश हो, हमारे मस्तिष्क में गम्भीर अध्ययन की ज्योति हो और हमारे व्यक्तित्व में साधन का बल हो ।''[6]

1.1.3 साहित्य के भेद -

साहित्य के भेदों को हम आकृति के सहारे निम्न प्रकार से समझेंगे -

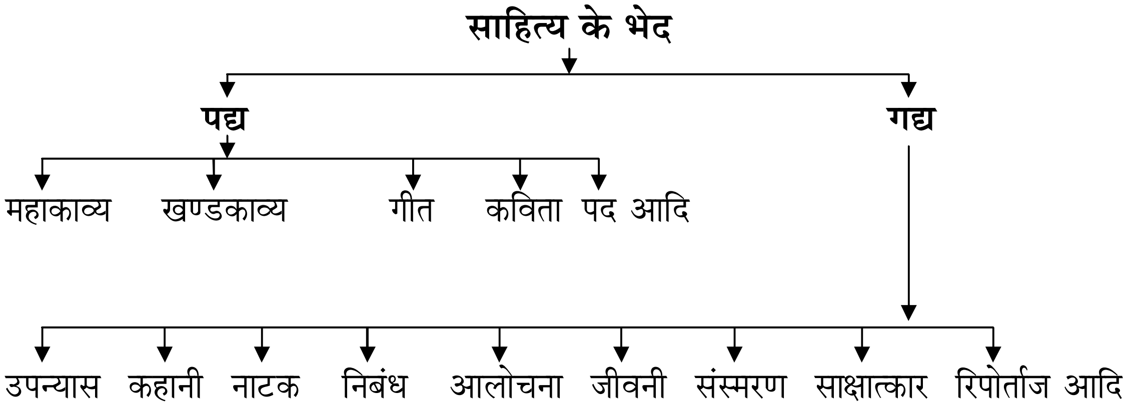

1.2 सिनेमा : स्वरूप विवेचन

सिनेमा हमेशा से ही सामाजिक परिवर्तन करने में आगे रहा है । यह सच्चाई है कि सिनेमा अपने वास्तविक अर्थो में न केवल गतिशील खिलौने का चित्र है । बल्कि वह जन शिक्षा का बड़ा ही प्रभावशाली माध्यम सिध्द हुआ है ।प्रत्येक फिल्म एक कहानी होती है । साहित्यिक सह-संबंधो के आधार पर सिनेमा की कहानी की कथावस्तु साहित्य की कहानी की कथावस्तु से पूर्णतः मेल खाती है । इसमें भी कथात्मकता पाई जाती है - भूमिका, कथावस्तु, पात्र एवं चरित्र-चित्रण, देशकाल वातावरण, संवाद, रस, अभिनय, भाषा-शैली, उद्देश्य आदि सभी तत्वों के माध्यम से फिल्म की कहानी को नया, आकर्षक एवं प्रभावी बनाया जाता है । साहित्य की विधाओं की भाँति सिनेमा को भी कई भागों में बाँटा जा सकता है - आर्ट फिल्में, टेली फिल्में, चाइल्ड फिल्में, डाक्यूमेंट्री फिल्मे, कमर्शियल फिल्में, वृत्तचित्र,

विज्ञापन फिल्में, वार ॲण्ड पीस फिल्में आदि । किसी भी फिल्म की कहानी में साहित्य के छः प्रमुख तत्वों के अलावा अन्य तत्व भी पाये जाते हैं । इसमें निर्माता, निर्देशक, पटकथा-लेखक, अभिनय कर्मी, गीतकार, संगीतकार, कोरियोग्राफर, कमेंटेटर, स्टंट मैन, साज सज्जाकार, आदि व्यक्ति प्रतिभाग करते हैं । सिनेमा में भी नव रस, गुण, ध्वनि, रीति आदि का समावेश होता है । साहित्य की भाँति सिनेमा में भी शृंगार रस 'रसराज' है । लगभग प्रत्येक फिल्म में कम-से-कम एक प्रेम कहानी अवश्य रहती है ।

सिनेमा अभिव्यक्ति का सर्वाधिक प्रभावशाली एवं सशक्त माध्यम है । ''इसमें कोई दो राय नहीं की सिनेमा सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा राजनैतिक सभी स्थितियों को आत्मसात करते हुए रचनात्मक माध्यम बना है । कहानी, उपन्यास, संस्मरण, नाटक, कविता, रिपोर्ताज, रेखाचित्र सभी को सिनेमा ने एक सशक्त अभिव्यक्ति दी है ।सिनेमा सृजनात्मक और यांत्रिक प्रतिभा का सुन्दर संगम बन बया है ।''[7] कला, विज्ञान और व वाणिज्य का त्रिवेणी संगम सिनेमा माध्यम में दिखाई देता है ।

1.2.1 सिनेमा की परिभाषा :

सिनेमा का स्वरूप स्पष्ट करने के लिए विविध लेखकों, विद्वानों, सिनेमा के जानकारों ने सिनेमा की जो परिभाषाएँ प्रस्तुत की है उसे देखना होगा ।सिनेमा की कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाओं को हम यहाँ प्रस्तुत करेंगे -

1) फिल्मकार कमलस्वरूप -

''सिनेमा अनुभूति और संवेदना, व्यष्टि और समष्टी के सम्बन्ध का विज्ञान है । विभिन्न नाटय एवं ललित कलाओ का सम्मिश्रण है । किसी घटना के काल और दिक् के आयामों का रूपांकन है ।''[8]

2) विजय शर्मा -

''फिल्म साहित्य से अलग एक भिन्न विधा है । यहां कथानक होता है मगर वही सबकुछ नहीं होता है । फिल्म भिन्न मुहावरों में बात करती है ।''[9]

3) आलोक पांडेय -

“दरअसल सिनेमा सिर्फ अभिव्यक्ति नहीं है, वह एक अन्वेषणकारी माध्यम भी है। वह बहुत कुछ ऐसा भी कहता और करता है, जिसे शब्दों में नही कहा जा सकता।”[10]

4) बसंतकुमार तिवारी -

“सिनेमा एक बड़ा धोखा है । कुछ भी नहीं होकर वह चलचित्रों से दर्शक को इतना आत्मविभोर कर देता है कि कुछ समय के लिए वह अपने अस्तित्व को भी भूल जाता ह।”[11]

5) डॉ.कैलाशनाथ पांडेय -

“जीवन की हर झांकी और मंजर को रूपायित करनेवाला सिनेमा संसार का सबसे सुंदर सांस्कृतिक उपहार है ।”[12]

6) शुचिता शरण -

“सिनेमा को एक कला, एक व्यवसाय, एक उद्योग, एक नकली दुनिया, चकाचौंध, एक हकीकत अनेक विशेषणों से संबोधित किया जा सकता है ।”[13]

7) डॉ.गजेंद्रप्रताप सिंह -

“फिल्म मनोरंजन के साथ साथ हमारे देश की संस्कृति, सभ्यता और नए युग को प्रदर्शित करती है । फिल्म ही एक ऐसा माध्यम है, जिसके जरिए लोग हर चीज से प्रभावित होते है ।”[14]

8) विनोद दास -

“सिनेमा एक कला है और अन्य कलाओं की तरह यह भी हमारे समय और समाज की बुनियादी तथा तत्कालिक चिंताओं-जिज्ञासाओं को अपनी सृजनशीलता का एक अनिवार्य अंश बनाता रहा है ।” [15]

9) ब्लादीमिर इल्यीच लेनिन -

“हमारे लिए सिनेमा सभी कलाओं से अधिक महत्वपूर्ण है । सिनेमा न केवल लोगों के मनबहलाव का बल्कि का सामाजिक शिक्षा, संवाद स्थापित करने का तथा हमारी विशाल जनसंख्या को एक सूत्र में बाँध लेने का सशक्त साधन है ।”[16]

10) लुई बुनुएल -

“सिनेमा स्वप्नलोक, मानवीय भावनाओं को उनकी सम्पूर्णता में दिखाने और मानवीय संवेगों को चित्रित करने का सर्वोत्तम माध्यम है ।”[17]

इस प्रकार उपर्युक्त कई विद्वानों द्वारा सिनेमा की अलग अलग परिभाषाएँ प्रस्तुत की गई हैं । जिसमें सिनेमा माध्यम को समझने-समझाने का प्रयास किया गया है । लेकिन उपर्युक्त किसी भी परिभाषा को परिपूर्ण नहीं कहा जा सकता । ये सभी परिभाषाएँ मिलकर भी सिनेमा के स्वरूप पर पर्याप्त प्रकाश नहीं डालती । लेकिन इतना तो अवश्य है कि इनसे सिनेमा के स्वरूप को समझने में थोडी-बहुत मदद तो मिलती ही है । परंतु इनसे सिनेमा के स्वरूप को पूरी तरह से समझा नहीं जा सकता । यदि हमें सिनेमा के स्वरूप को भलिभाँति समझना है तो फिल्मों के प्रकार, सिनेमा के तकनीकी और कला पक्ष को समझना होगा ।

आगे हम सिनेमा के स्वरूप को और गहराई से समझने का प्रयास करेंगे -

1.2.2 फिल्मों के प्रकार -

फिल्में अनेक प्रकार की होती है । फिल्म एक माध्यम है जिसे प्रत्येक फिल्मकार अपनी दृष्टि से उपयोग करता है । उद्देश्य, समयावधि, विषय, स्वरूप आदि के अनुसार फिल्मों के अनेक प्रकार बनते हैं जिसे निम्न प्रकार से देखा जा सकता है ।

1.2.2.1 फीचर फिल्म -

अंग्रेजी ’फीचर’ (Feature) शब्द का हिंदी अर्थ है ‘कथाशैली’ । फीचर फिल्म उसे कहा जाता है जिसका निर्माण व्यावसायिक लाभ उठाने हेतु किया जाता है । इन फिल्मों का उद्देश्य मात्र मनोरंजन होता है । इस प्रकार के फिल्मों की लागत अधिक होती है । इनमें से

अधिक फिल्मों का कथानक कल्पनापरक होता है । कहीं-कहीं यथार्थ घटना पर कल्पना की चादर ओढ़ी जाती है । भारतीय हिंदी फिल्मों का एक ढाँचा होता है, जिसके आधार पर फिल्मों का सृजन होता है । जैसे- कथा, नृत्य-गीत, थ्रीलर दृश्य, प्रेम त्रिकोण, मारधाड, करुणा आदि । इस प्रकार की फिल्मों के विषय कई बार यथार्थ की कोई भीषण समस्या भी होती है । मूलतः अधिकांश फिल्मों में नायक-नायिकाएँ प्रमुख होती है ।

भारत में पहली फिचर फिल्म दादासाहेब फालके ने सन् 1913 ई. में 'राजा हरिश्चन्द्र' नाम से बनाई । इस प्रकार की फिल्मों का प्रदर्शन सिर्फ सिनेमाघरों में होता है। फिल्में बनने के बाद वितरकों के जरिए फिल्मों को बाजार में बेचा जाता है । पाश्चात्य देशों की तुलना में भारतीय फिल्में अधिक भावपूर्ण, संवेदनशील तथा मनोरंजनात्मक होती है । इस प्रकार के फिल्मों की समयावधि ढाई-तीन घण्टे होती है ।

1.2.2.2 फीचर फिल्म के प्रकार -

फिल्म जॅनर के आधार पर फीचर फिल्मों को कई प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है । जॅनर फिल्मों को अलग अलग वर्गों में रखने और उसके माध्यम से दर्शकों की अभिरूचियों को परखने का एक बेहतर तरीका है । ''फिल्म सिध्दान्तकारों के मुताबिक जॅनर एक पध्दति है, जिसके जरिए फिल्मों के विषय अथवा उनकी विवरणात्मक शैली में दिखनेवाली समानता के आधार पर उन्हें वर्गिकृत किया जाता है । सिनेमा में यह थ्योरी साहित्य से आयी है ।''[18] अलग अलग जॅनर में फिल्में बनती है । जैसे - एक्शन, अपराध, रहस्य, प्रेम, पारिवारिक, हॉरर, म्युझिकल, थ्रिलर, हास्य, साइंस फिक्शन, युध्द सिनेमा आदि ।

1.2.2.3 हिंदी फिचर फिल्म के प्रकार -

यहाँ हम हिंदी फीचर फिल्म के कुछ प्रचलित प्रकार निम्न रूप से देखेंगे -

1) प्रेमप्रधान फिल्में -

हिंदी फिल्मों में 'प्रेम' इस विषय को कई प्रकार से और कई अँगल्स से फिल्माया गया है । मुख्यधारा की कोई भी फिल्म आप देखें उसमें 'प्रेम-कहानी' आपको नजर आएगा।

हिंदी फिल्मी दुनिया में प्रेम कथाओं का कोई अंत नहीं है । इस विषय पर हजारों की संख्या में फिल्में बनी है ।आज भी यह सिलसिला जारी है । हिंदी फिल्मों का यह सबसे हिट फार्म्युला है । प्यार, इश्क, मोहब्बत, आशिकी के इर्द-गिर्द यह फिल्में घूमती है । कहीं प्रेम त्रिकोण तो कहीं लंबी जुदाई दिखाई देती है । प्रेमकथा के संदर्भ में रिचर्ड हॅरिसन कहते है -

"Romance applied to stories, is generally taken to mean that there is a dominant love theme and the dictonary describes is (among several other things) as a love affair an series of facts having this character."[19]

वर्तमान कालिन हिंदी फिल्मों में 'प्रेमप्रधान' कथाओं की भरमार है । प्रेमप्रधान फिल्मों की संख्या बॉलिवूड में हमेशा से ही ज्यादा रही है ।

2) हिंसाप्रधान फिल्में -

बॉलिवुड में आज हिंसाप्रधान फिल्मों की बाढ़ सी आ गई है । आमतौर पर इस तरह की फिल्मों में हिंसा और खून-खराबा दिखाकर डर पैदा किया जाता है । ये फिल्में दर्शकों को चौंकाती है । इन फिल्मों में हिंसा के साथ-साथ सेक्स भी परोसा जाता है । हिंसा और सेक्स का अजीब मिश्रण इन फिल्मों में देखा जा सकता है ।

3) हास्यप्रधान फिल्में -

हास्यप्रधान या कॉमेडी फिल्में भी हिंदी में बड़े पैमाने पर बनती हैं । इन फिल्मों का उद्देश्य दर्शकों का मनोरंजन करना होता है । हास्य प्रधान फिल्में बनाना आसान काम नहीं है। इन फिल्मों में रोजमर्रा की जिंदगी के अनुभव, घटनाओं आदि का सहारा लेकर उसपर व्यंग्य करके हास्य पैदा किया जाता है । छोटी-छोटी घटनाओं तथा प्रसंगो के माध्यम से हास्य निर्माण होता है । फिल्म के चरित्र भी हास्य निर्माण में अपना योगदान करते हैं । कॉमेडी फिल्में दर्शक बहुत पसंद करते हैं । इन फिल्मों के द्वारा होनेवाले हँसी-मजाक, मनोरंजन से वे अपने जीवन की परेशानियों को थोडी देर के लिए क्यों न हो भूल जाते हैं ।

4) सामाजिक फिल्में -

समाज से जुड़े प्रश्नों पर जिन फिल्मों के माध्यम से भाष्य किया जाता है वे फिल्में सामाजिक फिल्में कहलाती है । आर्थिक शोषण, जातिभेद, धोखेबाजी, सामाजिक प्रताड़ना, सामाजिक विद्वेष, प्रांतवाद, साम्प्रदायिकता, नक्सलवाद, आतंकवाद आदि विषयों को लेकर ये फिल्में बनती हैं । ये फिल्में समाज को आईना दिखाने का काम करती हैं । हिंदी में हर साल इस विषय पर कई फिल्में बनती हैं ।

5) राजनीतिक फिल्में -

राजनीतिक विषयों को लेकर बहुत कम फिल्में हमारे देश में बनती है । हालाँकि हमारा पूरा देश आज राजनीति से प्रेरित है । गल्ली से लेकर दिल्ली तक राजनीति में रूचि रखनेवाले लोग हैं । हमारे जीवन पर राजनीति का गहरा प्रभाव है । इतने बड़े लोकतांत्रिक देश में 'राजनीति' विषय पर इतनी कम मात्रा में फिल्में बनना चिंता का विषय है ।

खैर, देश की राजनीति, राज्य की राजनीति, राजनेताओं का चरित्र, राजनीति की पैंतरेबाजी आदि विषयों पर राजनीतिक फिल्में बनती हैं । इन फिल्मों को बनाने से पहले फिल्म विषय से संबंधित अनुसंधान भी करना जरूरी होता है । तथ्यों की जाँच-पडताल करनी होती है । हिंदी में इस विषय को लेकर बनीं कुछ उल्लेखनीय फिल्में इस प्रकार है - आँधी, राजनीति, युवा, रंग दे बसंती, चक्रव्युह, सत्याग्रह आदि ।

6) पारिवारिक फिल्में -

पारिवारिक फिल्मों में परिवार से संबंधित विषय होते हैं । जैसे - परिवार के आपसी संबंध, बिखराव, घुटन, टूटन, अत्याचार, प्रेम, मिलना-बिछुड़ना आदि । भाई-भाई का झगडा, माँ-बाप की भर्त्सना, पती-पत्नी के बीच की तकरार, बाप-बेटे के बीच झगडा, बेटी-माँ-बाप के बीच झगडे आदि विषयों पर ये फिल्में बनती हैं । इन फिल्मों के माध्यम से संस्कृति, परंपरा, धर्म का पालन, आदर्श आदि का पाठ पढाया जाता है । यह देश की एकता, सामाजिक सद्भाव और धार्मिक सहिष्णुता के लिए आवश्यक है ।

1.2.2.4 डॉक्यूमेंट्री फिल्म -

इसे वृत्तचित्र भी कहा जाता है । इन फिल्मों का उद्देश्य सूचना और शिक्षा देना है। इन फिल्मों में कल्पना के स्थान पर यथार्थ पर बल दिया जाता है । इन फिल्मों का बजट फीचर फिल्म की तुलना में कम होता है । इस प्रकार की फिल्मों का निर्माण सरकारी तथा गैरसरकारी संस्थाओं द्वारा अनुदान देने से किया जाता है । इस प्रकार की फिल्मों का प्रदर्शन सिनेमाघरों में नहीं होता ।राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय फिल्म समारोहों में होता है । अधिकांश डॉक्युमेंट्री फिल्में राष्ट्रीय चैनलों पर दिखाई जाती हैं । इन फिल्मों मे 'विचार' तथा 'सूचना' तत्त्व केंद्रबिंदु होता है।

सूचना एवं तकनीकी विकास की बदौलत आज अच्छे, यथार्थ, समस्यावाले वृत्तचित्र निर्माण हो रहे हैं । इस तरह की फिल्मों का एक समृध्द इतिहास है और वे हमेशा से लोगों को शिक्षित तथा सूचित करते हुए उनके व्यापक जागरण का लक्ष्य पूरा करती रही हैं । छोटे परदे पर डॉक्यूमेंट्री फिल्में अधिक प्रभावी सिध्द हो रही है । दूरदर्शन के माध्यम से ग्रामीण जनता इन फिल्मों को देखती हैं क्योंकि इन फिल्मों से उन्हे अच्छी जानकारीयाँ मिलती हैं । पर्यावरण तथा जन स्वास्थ के प्रति सजगता फैलाने में डॉक्यूमेंट्री फिल्मों का महत्वपूर्ण योगदान हैं । डॉक्यूमेंट्री, फिल्म के अनेक प्रकार है । जैसे - सूचनात्मक डॉक्यूमेंट्री, कहानी डॉक्यूमेंट्री, यात्रापरक डॉक्यूमेंट्री, सामाजिक डॉक्यूमेंट्री, शोधपरक डॉक्यूमेंट्री, ऐतिहासिक डॉक्यूमेंट्रि आदि ।

1.2.2.5 टेलीफिल्म -

टेलीफिल्म का निर्माण सिर्फ टेलिविजन के लिए किया जाता है । टेलीफिल्म तथा फिचर फिल्म में काफी मात्रा में समानता होती है । जैसे - कथानक, पात्र, मारधाड, संघर्ष, संगीत आदि । इन फिल्मों को बनाने के लिए फिचर फिल्म की तुलना में कम लागत आती है । टेलीफिल्मों की शुरुआत ही इस उद्देश्य से हुई है कि विकास संबंधी अभियानों को बढ़ावा मिलें। इस कारण अधिकतर टेलीफिल्म के विषय विकास संबंधी रहे है और उनमें भी

ग्रामीण विकास संबंधी विषय बड़ी मात्रा में लिए जाते हैं, क्योंकि भारत की करीबन सत्तर प्रतिशत जनसंख्या देहातों में रहती है ।

टेलीफिल्मों के माध्यम से जन स्वास्थ, जलसंरक्षण, पर्यावरण संरक्षण, बालविकास, आवास निर्माण, ग्रामोद्योग, सफाई आदि तमाम विषयों पर समय - समय पर देहाती जनता को प्रेरित किया जाता है ।

1.2.2.6 एनिमेशन (गतिकला) और कार्टून फिल्म -

एनिमेशन और कार्टुन फिल्मों का निर्माण विशेष रूप से बच्चों को ध्यान में रखकर किया जाता है । इन फिल्मों को बनाने में आधुनिक तकनीक का प्रयोग किया जाता है । काल्पनिक कथाएँ, दंतकथाएँ, पुराण, प्राचीन घटनाएँ आदि का सहारा लेकर कार्टून फिल्में बनाई जाती है । इस प्रकार की फिल्में देखने में बच्चे-बूढे भी रुचि रखते है । इन फिल्मों का प्रदर्शन टेलिविजन तथा सिनेमाघरों में भी होता है । आजकल हिंदी में एनिमेशन और कार्टून फिल्मों ने धूम मचाई हैं । बच्चों पर इन फिल्मों का जबरदस्त सम्मोहन आज देखा जा सकता है ।

1.2.2.7 विज्ञापन फिल्म -

व्यावसायिक लाभ हेतु किसी दुकान, व्यापारी प्रतिष्ठाण, कम्पनी द्वारा अपना उत्पाद तथा सेवा बेचने हेतु बनाई जानेवाली फिल्म 'विज्ञापन फिल्म' कहलाती है । ग्राहकों को अपने उत्पाद की जानकारी देने हेतु सुप्रसिध्द फिल्म नायक - नायिकाओं को लेकर इन फिल्मों को बनाया जाता है ताकि ग्राहक उनको देखकर उस वस्तु के प्रति आकर्षित हो सके । विज्ञापन फिल्मों का प्रदर्शन टी.वी. चैनलों तथा सिनेमाघरों में फिचर फिल्म के मध्यांतर में किया जाता है । विज्ञापन फिल्मों ने आज अपना अलग अस्तित्व बनाया है । जिसके कारण ग्राहक तथा उत्पादक दोनों को फायदा होता है ।

1.3 सिनेमा में अंतर्निहित तत्व -

सिनेमा में अंतर्निहित दो महत्वपूर्ण तत्व है -

1) सिनेमा का तकनीकी पक्ष ।

2) सिनेमा का कला पक्ष ।

फिचर फिल्म केवल कला न होकर तकनीक भी है । फिल्म की कल्पना एक व्यक्ति विशेष से प्रारम्भ होती है, किन्तु उस कल्पना को दर्शकों के समक्ष फिल्म के रूप में प्रस्तुत करने तक की प्रक्रिया में निर्माता, निर्देशक अनेक कलाकारों, तकनिशियनों तथा विशेषज्ञों का भी योगदान होता है ।

यहाँ हम सिनेमा के तकनीकी और कला पक्ष को विस्तार से समझेंगे -

1.3.1 सिनेमा का तकनीकी पक्ष -

सिनेमा बहुत हद तक तकनीक पर निर्भर है । इसलिए इसके तकनीकी पक्ष को समझना अत्यंत आवश्यक है । सिनेमा के तकनीकी पक्ष को हम निम्न रूप से समझने का प्रयास करेंगे -

1.3.1.1 फिल्म निर्माता (फिल्म प्रोड्यूसर) -

फिल्म निर्माण में निर्माता की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती है । कहानी के चुनाव से लेकर फिल्म प्रदर्शन तक की जिम्मेदारी निर्माता की होती है । फिल्म निर्माण से लाभ तथा हानी का जिम्मेदार निर्माता ही होता है । फिल्म यह निर्देशक का माध्यम है इसमें कोई दो राय नहीं है । इसलिए फिल्म के बारें में 'डायरेक्टर इज द कॅप्टन ऑफ द शिप' ऐसा कहा जाता है । यही बात अगर फिल्म की लागत को ध्यान में रखकर निर्माता के बारे में कहनी हो तो कहना पडेगा कि 'प्रोड्युसर इज द ओनर ऑफ द शिप' । फिल्म अगर फ्लॉप हुई तो स्पॉट बॉय से लेकर निर्देशक तक किसी का भी आर्थिक नुकसान नहीं होता, लेकिन निर्माता का बहुत नुकसान होता है । निर्माता अगर आर्थिक रूप से सक्षम है तो वह इस नुकसान को पचा सकता है, लेकिन अगर नहीं है तो फिर कर्ज की दलदल में फँस जाता है ।

1.3.1.2 फिल्म निर्देशक (फिल्म डायरेक्टर) -

फिल्म यह निसंदेह निर्देशक का माध्यम है । निर्देशक के बिना फिल्म की कल्पना भी नहीं की जा सकती । निर्देशक फिल्म का सर्वेसर्वा होता है । फिल्म के लिए कहानी चुनने और उस पर सोचने की मूल जिम्मेदारी निर्देशक की ही होती है । कहानी पर फिल्म बनाने से पहले निर्माता के अनुमोदन की आवश्यकता होती है, क्योंकि किसी भी निर्देशक का प्रधान उत्तरदायित्व निर्माता के प्रति है । कहानी चुनने से लेकर फिल्म प्रदर्शन तक निर्देशक की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है । एक अच्छे निर्देशक के लिए यह जरुरी है कि फिल्म संबंधी सभी विधाओं की पूरी जानकारी रखे ताकि जरूरत पडने पर दूसरों का मार्गदर्शन कर सके । हालाँकि यह जरूरी नहीं है कि वह सिनेमा के सभी विभागों में निपुण हो । यह इसलिए आवश्यक है कि निर्देशक को शुरू से अन्त तक फिल्म के प्रत्येक कार्य को अच्छी तरह से पुरा करना होता है । निर्देशक को उसके काम में सहायता के लिए एक प्रधान सहयोगी निर्देशक होता है । प्रधान सहयोगी निर्देशक को भी फिल्म खत्म होने तक निर्देशक के साथ दौड़ धूप करनी पड़ती है । अतः निर्माता के बाद निर्देशक ही सबसे महत्वपूर्ण होता है । निर्देशक कलाकार तथा निर्माता के बीच का माध्यम होता है ।

1.3.1.3 कला निर्देशक (आर्ट डायरेक्टर) -

फिल्म की शूटींग चाहे इनडोअर हो या आऊटडोअर, बंगले में हो या फिर स्टुडियों में, सेट निर्माण एक महत्वपूर्ण कार्य है जो कला निर्देशक के नियंत्रण में संपन्न होता है ।फिल्म के कथानक के अनुरूप सेट डिझायनिंग किया जाता है । शूटींग चाहे आऊटडोअर हो या स्टुडियो में शूटींग स्थलों के चुनाव में कला निर्देशक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है । कलाकारों के रंग तथा सेट के रंगो में साम्य तथा विषमता रखना कला निर्देशक का कार्य है। कला निर्देशक को बहुत सारी बातों का खयाल रखना पड़ता है । ‘‘यदि किसी कलाकार को पत्थर मारने का दृश्य है तो निर्देशक को दिखाना ही पडता है कि उसे पत्थर फेंक कर मारा जा रहा है । यदि सचमुच का पत्थर फेंक कर मारा जाए तो उस कलाकार की क्या अवस्था होगी, यह आप सोच सकते है ।कला निर्देशक पल्प से पत्थर के टुकडों की नकल तैयार

करते है। यह देखने में पत्थर की तरह ही होगा । साथ ही कलाकार के लिए सुरक्षित भी होगा ।''[20]

1.3.1.4 संगीत निर्देशक (म्युझिक डायरेक्टर) -

निर्देशक एवं पटकथा की जरुरत के हिसाब से संगीत निर्देशक संगीत रचते है । फिल्मों का इतिहास बताता है कि कई फिल्में केवल गीत-संगीत के आधार पर सुपरहीट हुई हैं।आज भी कई फिल्में उस फिल्म में फिल्माये गये गानों की वजह से प्रसिध्द हैं । फिल्म में कहानी के अनुसार गीत-संगीत की जरूरत होती है ।फिल्म में गाने स्वाभाविक रूप से आने चाहिए । फिल्म की मांग के अनुसार निर्देशक, गीतकार और संगीतकार आपस में विचार-विमर्श करके गीत-संगीत की रचना करते हैं । गीतकार गीत लिखकर संगीतकार के पास भेजता है । संगीतकार अपनी लय और ताल के अनुरूप गीतकार के शब्दों को सजाते हैं । गीत की धुन प्रायः संगीतकार स्वयं तैयार करते है । गीतों की रेकॉर्डिंग स्टुडियों में होती है । फिल्म के गीत-संगीत में संगीत निर्देशक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है ।

1.3.1.5 नृत्य निर्देशक (कोरिओग्राफर) -

फिल्म में गीत के अलावा पूरा फिल्मांकन निर्देशक के नेतृत्व में चलता है, लेकिन गाने के शूटिंग का दायित्व नृत्य निर्देशक पर होता है । गाने की शूटींग अगर छोटे-छोटे शॉट्स के माध्यम से की जाए तो वह और ज्यादा असरदार हो जाती है । नृत्य की जानकारी, कलाकारों को नृत्य सिखाकर उनसे अपेक्षित नृत्य करवाकर लेने की कला कैमेरे की अच्छी जानकारी ये सब बातें नृत्य - निर्देशक बनने के लिए आवश्यक होती है । गाने के हिसाब से स्टेप्स इमॅजिन करके कलाकारों से नृत्य करवा लेना मुश्किल काम होता है । लेकिन एक अच्छा नृत्य निर्देशक यह सब अच्छी तरह से अरेंज करता है । हिंदी फिल्मों में गानों के उपर बहुत पैसा खर्च किया जाता है, इस कारण नृत्य निर्देशक की जिम्मेदारी भी उतनी ही ज्यादा बढ़ जाती है ।

1.3.1.6 एक्शन डायरेक्टर -

सिनेमा में मारधाड, साहस और पराक्रम के दृश्य सच नहीं होते लेकिन पर्दे पर देखने के बाद सच लगते है । इन दृश्यों का शूटींग करते समय मार न खाने पर भी मार खाने का, अभिनेता ने अभिनेत्री को गहरी खाई में गिरते हुए बचाकर विलेन के खाई में गिरने का झूठा माहौल तैयार करना पडता है । इस तरह के एक्शन दृश्य एक्शन डायरेक्टर के नियंत्रण में शूट किए जाते है । फाइट मास्टर्स को बुलाना, कहानी के अनुरूप एक्शन सीन अरेंज करना, आवश्यकता के अनुसार स्टंटमन को बुलाना और अभिनेता के खुद के या फिर कभी डमी का इस्तेमाल कर फिल्म दर्शकों के दिल दहला देनेवाले एक्शन सीन बनाना एक्शन डायरेक्टर का काम होता है । स्टंट्स और कैमरा इन दोनों की जानकारी होना उनके लिए जरुरी होता है । कई बार स्टंटमन का काम करनेवाले ही आगे चलकर एक्शन डायरेक्टर बनते है ।

1.3.1.7 कैमरामन (सिनेमेटोग्राफर) -

कैमेरा तथा कैमरामन के बिना फिल्म नहीं बन सकती । वे सभी कार्य जो कि कैमेरे की तकनीक से होते है, जैसे फिल्म चढाना, कैमेरा बॅटरीज, कैमेरा स्टेण्ड, फिल्म स्पीड, लेन्स चुनाव, फ्रेम कम्पोजिशन, कैमेरा कोन आदि सभी कार्य कैमेरामन को आना अत्यावश्यक है । अच्छे फिल्मांकन के लिए एक अच्छे तथा कुशल कैमेरामन की आवश्यकता होती है । साथ ही कैमेरामन को यह पता भी होना चाहिए की फिल्म निर्देशक क्या चाहता है । “जो कैमेरामन निर्देशक की कल्पना के साथ सुर मिला सकता है वही कैमरामन निर्देशक के मन की कल्पना को सार्थक रूप से फिल्म में पूरी तरह प्रतिफलित कर पाएगा । इसलिए निर्देशक, कैमेरामन और कलाकारों में अच्छी आपसी समझ की जरूरत होती है । इसी कारण अधिकांशतः यह देखा जाता है कि एक निर्देशक एक विशेष कैमेरामन को लेकर ही काम करते है । झट से कैमेरामन नहीं बदलना चाहते ।”[21] कैमेरामन को सहायता के लिए सहयोगी कैमेरामन भी होते हैं, वे भी कैमेरामन के साथ अनेक दायित्वों का वहन करते है । निर्देशक एवं पटकथा की जरूरत के हिसाब से एवं दृश्य के अनुसार

कैमरामन को लाइट की व्यवस्था करनी होती है । सहयोगी कैमेरामन इसमें कैमेरामन का सहयोग करते है ।

1.3.1.8 प्रोडक्शन मैनेजर :

सिनेमा बनाने के जो विविध डिपार्टमेंटस् हैं उन्हे समय-समय पर लगनेवाली चीजें, सामान खरीदकर या किराये से लाकर मुहैया कराना, शूटींग लोकेशन की परमिशन निकालना। लोकेशन पर हर एक की जरूरत का खयाल रखना । जिसको जिस चीज की जरूरत है उसे वह चीज समय पर पहुँचाना आदि प्रोडक्शन मैनेजर का काम होता है । प्रोडक्शन मैनेजर को हम शूटींग टीम सर्कस का 'रिंग मास्टर' भी कह सकते है । उसकी सहायता के लिए एक असिस्टेंट प्रोडक्शन मैनेजर होता है और दस-बारह 'स्पॉट बॉय' होते है । 'स्पॉट बॉय' रात-दिन मेहनत करके शूटींग टीम की सहायता करते हैं । उनका बॉस प्रोडक्शन मैनेजर होता है । कोई भी चीज माँगी जाने पर नही न कहनेवाला मैनेजर ही सफल प्रोडक्शन मैनेजर माना जाता है । प्रोडक्शन मैनेजर का काम खर्च को दिमाग में रखकर उसे बिना झंझट के पूरा कर लेना है । ''शूटींग चाहे इनडोअर हो या आऊटडोअर प्रोडक्शन मैनेजर को छोटी-छोटी बातें अपनी उँगलियों पर रखनी होती है । निर्देशक द्वारा आऊटडोअर लोकेशन पसंद कर लेने पर प्रोडक्शन मैनेजर तय करता है कि कौन किस प्रकार शूटींग पर जाएगा। कहां खाने और रहने की व्यवस्था होगी आदि । शूटींग स्पॉट पर किसी प्रकार की असुविधा न हो, समय से यथास्थान आवश्यक वस्तु जुगाड़ देना, फिल्म लाना, जिन फिल्मों को फिल्माया जा चुका है, उन्हें समय से एवं सटीक रूप से लेबोरेटरी भेजना आदि। इसके अलावा यूनिट की छोटी-छोटी समस्याओं का समाधान करना ये सब प्रोडक्शन मैनेजर के कार्य है ।''[22] इससे पता चलता है कि फिल्म निर्माण प्रक्रिया मे प्रोडक्शन मैनेजर की भूमिका कितनी महत्वपूर्ण होती है ।

1.3.1.9 फिल्म विषय पर शोध कार्य :

फिल्म बनाने से पूर्व कुछ फिल्म विषय से संबंधित शोध-कार्य होना भी आवश्यक होता है ।उदाहरणार्थ - किसी व्यक्ति विशेष पर या किसी ऐतिहासिक विषय पर बनाई

जानेवाली फिल्म में वह समय तथा उस व्यक्ति विशेष से संबंधित जानकारी संकलित करनी पडती है । उस काल का वातावरण, वेशभूषा, केशभुषा, भाषा संस्कृति, गीत-संगीत आदि के बारें में रिसर्च करना पडता है । ''वस्तुतः सत्यजित राय ने प्रेमचंद की 'शतरंज के खिलाडी' कहानी के बहाने अपनी इसी शीर्षक से बनी फिल्म में उन्नीसवी शताब्दी के लखनऊ के जीवन के लगभग हर पक्ष का अध्ययन कर डाला । इसके लिए उन्होंने इतना गहरा और व्यापक शोध किया कि ऑक्सफोर्ड जैसे विश्वप्रसिध्द विश्वविद्यालय ने उनको डी. लिट्. की मानद उपाधि प्रदान की ।''[23]

1.3.1.10 फिल्म कलाकारों का चयन :

कहा जाता है कि फिल्म की सफलता फिल्म अभिनेता-अभिनेत्री पर निर्भर होती है और आज के समय में यह काफी हद तक सच भी है । फिल्म निर्माता-निर्देशक सोच विचार करने के बाद बजट के अनुसार और भूमिका के अनुसार कलाकारों का चयन करते है । चुने हुए कलाकारों के साथ अनुबंध किया जाता है । कहानी के कैरेक्टर्स के आधार पर ही विभिन्न अभिनय क्षमता एवं चेहरेवाले कलाकारों का चयन किया जाता है। यदि नए कलाकारों को सहायक कलाकार के रूप में लेना हैं तो उनका 'स्क्रीन टेस्ट' लिया जाता है । कलाकारों का भूमिका के अनुरूप चयन फिल्म के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण होता है ।

1.3.1.11 फिल्म शूटिंग -

फिल्म की शूटींग दो तरह के स्थलों पर होती है -

1) इनडोअर शूटींग

2) आऊटडोअर शूटींग

इनडोअर शूटींग किसी फिल्म स्टुडिओ में बनाए गए सेटस् पर होती है या फिर किसी होटल, मकान, बंगले में होती है । आऊटडोअर शूटींग किसी प्रेक्षणीय स्थल, बागों, पहाड़ों, समुद्रतट पर की जाती है । आऊटडोअर शूटींग के लिए विदेशों के लोकेशन भी चुने जाते है । जैसे फिल्म की कहानी की मांग हो वैसे शूटींग क प्रबंध किया जाता है ।

1.3.1.12 लाइट व्यवस्था -

लाइट व्यवस्था फिल्म तकनीकी पक्ष का एक महत्वपूर्ण अंग है । दृश्यों को कैमेरे में प्रभावशाली ढंग से बंद करने के लिए लाइट व्यवस्था का होना महत्वपूर्ण है । हरेक सीन के अनुरूप लाइट व्यवस्था करना जरुरी होता है । इनडोअर शूटींग के लिए बड़े-बड़े पॉवर के बल्ब की जरूरत होती है । सूरज की रोशनी यदि कम होती है तो उपकरणों की सहायता से कृत्रिम लाइट व्यवस्था का प्रबंध किया जाता है । बड़े-बड़े रिफ्लेक्टर्स भी उपयोग में लाये जाते हैं । शूटींग के दौरान अलग-अलग प्रकाश स्त्रोतों का प्रयोग किया जाता है । कैमेरामन की सूचना के अनुसार लाइट बॉईज खड़े रहते हैं। लाइटमैन के नियंत्रण में लाइट व्यवस्था का कार्य होता है ।

1.3.1.13 सेट डिझायनिंग -

कहानी की माँग तथा पटकथा के निर्देशों के आधार पर कृत्रिम लोकेशन्स तैयार किये जाते हैं । इसे ही फिल्मी सेट कहा जाता है । कला निर्देशक प्राकृतिक उपादानों को प्राकृतिक रूप से दिखाने का प्रयास करता है । जैसे - बारीश आना, बारीश के दिनों में बिजली चमकना आदि । कला निर्देशक कभी-कभी निर्देशक की सलाह के अनुसार पूरे गाँव तथा बस्तियाँ तैयार करता है । जिस प्रकार वह सिनेमा के लिए राजमहल तैयार करता है वैसे ही झोपडपट्टीयाँ भी बनाता है । भगवान का मंदिर या जेलखाना भी बनाता है ।इन सेटों का निर्माण इतनी कुशलता से किया जाता है कि फिल्म देखनेवाला दर्शक इसे प्राकृतिक मानकर ही देखने में व्यस्त हो जाता है ।

1.3.1.14 मेकअप मैन -

शूटींग के समय हिरो-हिरोईन तथा अन्य कलाकारों का पटकथा एवं चरित्र की मांग के अनुसार मेकअप करना होता है । मेकअप मैन शूटींग के पहले पात्र के अनुसार कलाकारों का मेकअप करते है । यदि ऐतिहासिक फिल्म है तो वह अभिनेता के चेहरे का मेकअप ऐतिहासिक पुरुष जैसा बना देता है । यदि आधुनिक पात्र है तो आधुनिक मेकअप करता है। मेकअप दो प्रकार के होते है - 1) साधारण मेकअप 2) चरित्र मेकअप ।

असल में मेकअप की आवश्यकता चरित्र को सही तरह से उतारने के लिए होती है, साज श्रृंगार के लिए नहीं । मेकअप मैन निर्देशक की इच्छानुसार मेकअप करते है । मेकअप जितना कम और स्वाभाविक हो उतना अच्छा होता है । "मेकअप मैन बहुत उच्च श्रेणी के कलाकर होते हैं । उन्हें यह जानना पड़ता है कि जिस फिल्म की शूटींग हो रही है उसमें किस रंग का प्राधान्य है । यह समझकर ही मेकअप करना होता है । इसके अतिरिक्त उन्हें कुछ विशेष तरह के मेकअप भी करने होते है । जैसे आग में जले हुए चमड़े का, चेहरे पर चेचक का, कटने के घाव, कुष्ठ रोगी, दुर्घटना में एक आँख नष्ट हो गई है आदि अनेक प्रकार के इफेक्ट तैयार करने पडते हैं । मेकअप मैन निर्देशक के साथ बातचीत करके ही अपना काम करते है ।"[24]

1.3.1.15 वेशभूषा (कॉस्ट्यूम)

किसी भी चरित्र का कॉस्ट्यूम या वेशभूषा क्या होगी उसे प्राथमिक रूप से निर्देशक ही तय करता है । ड्रेसमैन उसी अनुसार सबकुछ तैयार रखते हैं । यही नहीं कलाकार को सही पोशाक में सही ढंग से तैयार करने का दायित्व भी उनका ही होता है । जैसा फिल्म का कथानक होता है वैसी उसके अनुरूप वेशभूषा बनाई जाती है । पात्र के अनुसार वेशभुषा तैयार करने का काम वेशभूषाकार या ड्रेसमैन का होता है । ड्रेसमैन फिल्म के लिए किए गए शोधकार्य की सहायता लेता है । यदि फिल्म समुद्रतट के इलाके की है तो ड्रेसमैन पात्रों के कपडे समुद्रतटी मनुष्य जैसे कपडे पहनते है वैसे बनाता है । यदि फिल्म शहरी इलाके की है तो कपडे आधुनिक तरह के तैयार किए जाते हैं । "राजा के साथ जिस प्रकार राजपोशाक, राजमुकुट, तलवार, हीरे-मोती की माला, नाना आभूषण, कीमती पादुका, रत्न की अंगूठी है, उसी प्रकार भिखारी के साथ चीथड़ा और भिक्षापात्र है । पुजारी के लिए पटवस्त्र, तुलसी या रुद्राक्ष की माला, खडाऊं इन सबको सही ढंग से सिनेमा में दिखाने के लिए जिसके सहयोग की आवश्यकता होती है वह है ड्रेसमैन ।"[25]

1.3.1.16 केश-विन्यास -

हेअर ड्रेसर का काम है 'केश विन्यास' । कैरेक्टर के अनुसार उसकी सामाजिक हैसियत के अनुसार, दृश्य की जरुरत के अनुसार केश-विन्यास की आवश्यकता होती है । ''एक ग्रामीण किसान की स्त्री और एक बहुत धनी आधुनिक स्त्री के केश विन्यास एक जैसे नहीं होंगे । आजकल सिनेमा या धारावाहिक में देखा जाता है कि लडकी निम्न मध्यवर्ग या अत्यन्त गरीब घर की है, लेकिन उसके केश विन्यास को देखकर ऐसा लगता है कि मानो अभी ब्युटी पार्लर से बाल बनवाकर आयी है । इसपर थोडा विचार करने की जरुरत है ।''[26] उम्र बढाने के लिए बालों में सफेदी न लगाकर 'स्ट्रीप विग' की सहायता लेना ज्यादा स्वाभाविक होता है ।

1.3.1.17 स्टिल फोटोग्राफी -

हरेक दृश्य का शूटींग होने के बाद उसके दो-चार फोटोग्राफ्स उन कलाकारों के प्रसंगानुसार लिए जाते हैं । इसकी जरूरत ड्रेसेस एवं सेट का सिक्वेंस याद रखने के लिए और आगे जाकर पब्लिसिटी में इस्तेमाल के लिए होती है । इस काम में भी कुशलता की जरूरत होती है । कई कुशल स्टील फोटोग्राफर ही आगे जाकर अच्छे कैमरामन के तौर पर शोहरत कमाते है ।

1.3.1.18 ध्वनिमुद्रण (साउंड रेकॉर्डिंग) -

शूटींग के दौरान कलाकारों के संवाद तथा अलग अलग ध्वनियों को ध्वनि मुद्रित किया जाता है । शूटींग के समय बोले गये संवाद गाइड ट्रैक के रूप में ध्वनिमुद्रित किए जाते है । उसके बाद उसी टेप्स का डबिंग करके संबंधित कलाकारों से रेकॉर्डिंग स्टुडियों में उनके होठों की हलचल के साथ मॅच करके ध्वनिमुद्रित किए जाते है और यही संवाद का साउंड ट्रैक अंतिम प्रिंट में आता है । इसलिए मूलभूत तौर पर शूटींग के समय ध्वनिमुद्रण आवश्यक होता है ।

1.3.1.19 डबिंग -

संपादन की अंतिम रूपरेखा के अनुसार साउंड रेकॉर्डिंग स्टुडियों में हर एक कलाकार से उनके संवाद कहलवाए जाते है । इस प्रक्रिया को 'डबिंग' कहते है । जैसे उपर बताया गया है कि शूटींग के समय रिकार्ड किए संवाद फिल्म में नहीं रखे जाते उन्हें गाइड ट्रैक की तरह रखा जाता है । बाद में प्रत्येक दृश्य को पर्दे पर डालकर एक-एक दृश्य के अनुसार कलाकारों से संवाद बुलवाए जाते हैं । "कलाकार पर्दे पर अपने अभिनित चरित्र के होठों की गति को देखते हैं । अपने होठों की गति से मिलाकर वे संवाद बोलते हैं । वे गाइड ट्रैक की सहायता लेते हैं । शूटींग के समय संवाद बोलने में यदि कोई कमी रह गई हो या उच्चारण में त्रुटि रही हो तो डबिंग के समय उसे सुधारने का सुयोग रहता है । डबिंग में संवाद के अलावा और कोई भी शब्द रिकार्ड नहीं होता ।"[27]

1.3.1.20 साउंड इफेक्ट -

डबिंग के बाद साउंड इफेक्ट का काम बाकी रहता है । संवाद के अलावा फिल्मों में अनेक अन्य आवाजें भी होती हैं । जैसे जूते पहनकर चलने की आवाज, बारीश की आवाज, काँच के बर्तनों की आवाज, दरवाजा बन्द करने या खुलने की आवाज, गाडी स्टार्ट होने की आवाज, हॉर्न की आवाज, पुलिस के गाडी के सायरन की आवाज आदि ।वैसे ही पशु पंछियों की आवाज, कुत्तों का भौंकना, पहरेदारों की पुकार आदि समस्त ध्वनियों की आवश्यकता होती है। ये ही सब स्पेशल साउण्ड इफेक्ट है । "निर्देशक की आवश्यकतानुसार प्रधान सह निर्देशक तालिका बनाते है कि कौन सी आवाज कहाँ लगेगी, तदनुसार शब्दयंत्री के साथ विचार-विमर्श करके रिकार्ड करने की व्यवस्था करते हैं । शब्दयंत्री उन सभी साउंड इफेक्ट को अलग अलग चैनल पर रिकार्ड करते है । एक अन्य चैनल पर वे निर्देशक की पसंदानुसार नेपथ्य संगीत (बँकग्राउंड म्युझिक) रिकार्ड करते हैं । अपने ड्रामा सेंस का इस्तेमाल करते हुए शब्दयंत्री फिल्म के विभिन्न दृश्यों में इन समस्त ध्वनियों, संगीत एवं संवाद को दक्षता के साथ रिकार्ड करते हैं । असल में ये 'साउंड इफेक्ट' विशेष प्रभाव उत्पन्न करते है ।"[28]

1.3.1.21 फिल्म संपादन (फिल्म एडिटिंग)

फिल्म संपादन या एडिटिंग फिल्म निर्माण का अंतिम सोपान है । ''कपडे के टुकडों को जोड-जोड कर जिस प्रकार एक दक्ष दर्जी सुन्दर पोशाक तैयार करता है, फिल्म का सम्पादक भी प्रायः वही कार्य करता है और स्पष्ट करके कहूँ तो निर्देशक तरह तरह के सुंदर फूल लाकर संपादक के टेबल पर रख देते है । संपादक उन फूलों से दक्ष माली की तरह सुंदर माला गूंथ देता है । वस्तुतः संपादन चलचित्र का अत्यंन्त महत्वपूर्ण कार्य है ।''[29] फिल्म संपादक सबसे पहले निगेटिव्ह फिल्म को पॉजिटिव्ह करता है ।इस प्रिंट को फिल्म का 'फर्स्ट प्रिंट' कहा जाता है । ''फिल्म संपादन की शुरूआत फर्स्ट प्रिंट के तैयार होते ही शुरू हो जाती है । निर्देशक संपादक के साथ साथ सबसे पहले फर्स्ट प्रिंट का पूर्वावलोकन (रिव्हयू) तैयार करता है । तत्पश्चात् संपादक शूटींग के दौरान तैयार की गई डोप शीट के अनुसार खराब दृश्यों को काटकर अलग कर देता है ।''[30] उसके बाद कहानी तथा पटकथा के अनुसार फिल्म के सही दृश्यों को क्रम से जोड़ लिया जाता है । इसके बाद निर्देशक तथा संपादक फिल्म को देखते हैं तथा विचार-विमर्श कर फिल्म के दृश्यों को प्रभावी बनाने हेतु विभिन्न कम्पोजिशन दृश्य, क्लोज-अप दृश्य रि-एक्शन शॉट आदि को फिल्म में जोड़े जाने के क्रम का संपादन शुरू कर देते हैं । संपादन पर फिल्म का सौंदर्य ही नहीं, फिल्म की गति भी निर्भर करती है । अंतिम रूप में जब फिल्म तैयार होती है, तब प्रदर्शन के लिए वितरकों को दी जाती है ।

1.3.1.22 फिल्म वितरण (फिल्म डिस्ट्रीब्यूशन) -

फिल्म वितरक निर्माता से फिल्म के अधिकार खरीदते हैं । जैसे-सेटेलाइट अधिकार, देश में फिल्म प्रदर्शित करने के अधिकार, विदेश में फिल्म प्रदर्शित करने के अधिकार, डीवीडी के अधिकार, संगीत के अधिकार आदि । इस प्रक्रिया को 'फिल्म वितरण' की प्रक्रिया कहा जाता है । जिन वितरक कंपनियों को फिल्म के अधिकार दिए जाते है उनके साथ निर्माता अनुबंध करता है । फिल्म वितरण के अधिकार देने के पश्चात् फिल्म रीलिज

होती है या फिल्म का प्रदर्शन होता है ।यह फिल्म निर्माण प्रक्रिया का अंतिम चरण कहा जाता है ।

1.3.2 सिनेमा का कला पक्ष -

यहाँ हम सिनेमा के कला पक्ष को निम्न रूप से समझेंगे -

1.3.2.1 कथा - पटकथा -

फिल्म बनाने के लिए कहानी की जरुरत होती है । कहानी का चयन ही फिल्म का प्रथम सोपान है । निर्माता सबसे पहले कहानी को चुनकर निर्देशक के साथ विचार-विमर्श करता है । इसके बाद पटकथा तथा संवाद लेखकों को कहानी का सूत्र बताया जाता है । कहानी के आधार पर ही पटकथा लिखी जाती है ।कहानी तथा पटकथा के आधार पर ही फिल्म के कलाकार शूटींग के लोकेशन, गीत संगीत आदि तय किए जाते हैं। कहानी में बहुत सारे परिवर्तन कर पटकथा लिखी जाती है । पटकथाकार को फिल्म की तकनीकी जानकारी होना आवश्यक होता है । अलग अलग दृश्यों की तथा लोकेशन की जानकारी पटकथा में देना जरूरी होता है । पटकथाकार अभिनेता-अभिनेत्री, अन्य कलाकार, सेट डिझायनिंग, साउंड आदि के बारें में जानकारी लिखता है । पटकथाकार के पास साहित्यिक कहानी को फिल्म की कहानी में परिवर्तित करने की क्षमता होनी चाहिए ।

1.3.2.2 संवाद (डायलॉग) -

फिल्म के दृश्यों में कलाकारों द्वारा बोले जानेवाले वाक्य 'संवाद' कहलाते हैं । संवादों की रचना करनेवाला व्यक्ति संवाद लेखक कहलाता है । संवाद लेखक को यह ध्यान देना आवश्यक है कि फिल्म की कथा कैसी है । कथा के अनुरुप संवादों की भाषा इस्तेमाल करनी पडती है । पटकथा लिखने के बाद उस फिल्म के संवाद लिखे जाते हैं । कई बार फिल्मों के संवाद ही उस फिल्म को सुपरहिट बनाते हैं । जैसे - 'जंजीर', 'शोले', 'अमर प्रेम' आदि । कलाकार तथा परिस्थितियों के अनुरूप संवाद लिखने होते हैं । संवाद फिल्म का एक महत्वपूर्ण अंग है ।

1.3.2.3 स्क्रिनप्ले -

फिल्म के वह दृश्य जिससे बिना कुछ संवाद बोलते हुए भी कहानी कही जाती है, स्क्रिनप्ले कहलाते हैं । किसी बात को दृश्य के माध्यम से दर्शकों के सामने रखने से दर्शक अपने आप समझ जाता है कि इस दृश्य के माध्यम से क्या कहने की कोशिश हो रही है । वहाँ पर शब्दों की जरुरत नहीं होती है । वह दृश्य स्वयं अपनी कहानी कहता है । मशहूर पटकथाकार जावेद अख्तर 'स्क्रिनप्ले' को अपने एक साक्षात्कार में विस्तार से इस तरह समझाते है - "मैं आपको एक मिसाल देता हूँ। मैं आपको एक आदमी की कहानी सुनाता हूँ। ये मुफलिस आदमी भूखा रहता है लेकिन फिर भी कोई बेईमानी नहीं करता । ये तो है कहानी की शुरुआत, अब मैं इस काहनी को पर्दे पर कैसे दिखाऊँगा ? मैं इस तरह के सब-टाइटल्स तो नहीं इस्तेमाल कर सकता कि, 'ये रहा एक ईमानदार आदमी जो बहुत गरीब है।' तो मैं करुँगा ये कि इस आदमी को पटरी पर सोता हुआ या किसी झुग्गी झोपडी में सोता हुआ दिखाऊँगा । एक दिन वो एक रेस्तराँ के पास से गुजरता है और वहाँ के लोगों को खाते हुए देखता है । वो उनकी तरफ मायूसी से देखता है । उसके इस तरह से देखने से मैं समझ जाता हूँ कि वो भूखा है । अचानक कोई आदमी सडक पर उसके पास से निकलता है और ऐन उसी वक्त उसका बटुआ सडक पर गिर जाता है। हमारा हिरो बटुए को उठाता है, वो नोटों से ठसाठस भरा हैं । वो अमीर आदमी के पास भागा हुआ जाता है और कहता है, "साहब आपका बटुआ", हमारे हिरो की दाढ़ी बढ़ी हुई है, उसने गन्दे कपडे पहने हुए हैं। अमीर आदमी हैरान होता है, वो बटुआ लेता है, इस बदकिस्मत आदमी को गौर से देखता है और उसे इनाम के तौर पर सौ रूपए देने की कोशिश करता है । हमारा हिरो पैसा लेने से मना कर देता है और कहता है, "मैंने तो अपना फर्ज निभाया है और फिर मैं एक इज्जतदार आदमी हूँ ।" अब हमें समझ में आता है कि ये एक ऐसा आदमी है जो गरीब है, भूखा है, ईमानदार है और उसूलोंवाला भी है । तो वाकयात से मुझे इस आदमी के किरदार के बारे में सबकुछ पता चल जाता है । तो ये हुआ स्क्रिनप्ले ।"[31]

1.3.2.4 गीत-

फिल्मी गीतों की रचना कविता से अलग तो है ही, थोडी कठिण भी है । कविता लिखते समय कवि पूरी तरह से स्वतंत्र होता है । कविता कवि की प्रतिभा का मुक्त अविष्कार होती है ।फिल्मी गीत रचना के लिए अच्छे काव्य गुणों का होना तो - आवश्यक है ही साथ ही वह गीत प्रसंग के अनुरूप और फिल्म की कहानी से जुड़ा हुआ होना चाहिए ।इसके अलावा म्युझिक डायरेक्टर अगर गाने की धुन पहले ही बनाता है तो गीतों के शब्द भी उस धुन के अनुरूप ही हो इसका खयाल गीतकार को रखना पड़ता है । फिल्म का विषय, जिनपर वह गाना फिल्माया जा रहा है वह कलाकार चाहे वह शहरी हो, देहाती हो, पौराणिक चरित्र हो या ऐतिहासिक उसके अनुरूप ही गीत शब्दरचना करनी पडती है । इन सब बातों को ध्यान में लेकर फिल्मी गीत लिखना कोई साधारण कार्य नहीं है । उसके लिए उच्च कोटि की प्रतिभा की जरूरत होती है, और सिर्फ प्रतिभा से काम नहीं चलता फिल्मी गीतकार शब्दों की बाजीगरी में माहिर होना चाहिए । वह शब्दों का जादूगर होना चाहिए । अगर सच देखा जाए तो फिल्मी गीतकार एक उत्तम कवि ही होता है । लेकिन अकादमिक जगत में उसे 'कवि' भी नहीं माना जाता, उसका मान-सम्मान तो बहुत दूर की बात है ।

गीत एक नवसृजन है ।हिंदी सिनेमा के इतिहास में कई फिल्मी गीतों को अमरता का दरजा मिला है । यह भी एक तथ्य है कि कई फिल्में केवल उनके गानों की वजह से अपार सफलता की मंझिल तक पहुँची हैं । हिंदी भाषा को भारतवर्ष के जन-जन तक पहुँचाने का महत्वपूर्ण कार्य हिंदी गानों ने किया है । हिंदी सिनेमा में गीतकारों की एक लंबी और समृध्द परंपरा विद्यमान है । जैसे - शैलेंद्र, हसरत जयपूरी, मजरुह सुलतानपुरी, फैज, कैफी आझमी, इंदीवर, नीरज, साहिर लुधियानवी जावेद अख्तर, गुलजार आदि अनेकों नाम हैं । आज के समय में 'गुलजार' यह असाधारण प्रतिभा के फिल्मी गीतकार है । उन्हें अपने 'जय हो' गीत के लिए 'ऑस्कर पुरस्कार' से सम्मानित किया गया है ।

1.3.2.5 संगीत -

हिंदी फिल्मों में संगीत की भूमिका बहुत ही ज्यादा महत्वपूर्ण है । हिंदी फिल्मी गीत-संगीत का बहुत व्यापक प्रभाव समाज पर दिखाई देता है । फिल्मी गीत-संगीत को स्वयं अपने आप में भावनाओं को उभारने के लिए बनाया जाता है । इसमें एक और अतिरिक्त वस्तु होती है जो हमारी भावनाओं को उभारती तो है, साथ ही आनंदित भी करती है । फिल्म में गीत और संगीत का अभिन्न संबंध होता है । सदैव संगीत ने गीत को अमर बनाया है । आज संगीत के बिना हिंदी फिल्मों की कल्पना भी नहीं की जा सकती । संगीत का निर्माण एक सृजनात्मक कार्य है, और इसी गीत-संगीत की वजह से हमारी हिंदी फिल्मों की दुनिया के स्तर पर एक अलग पहचान है । तात्पर्य गीत-संगीत हिंदी फिल्म का एक सृजनात्मक पहलु है । ''जिसको देखो वही ये कहता है कि हिंदुस्तान में हर साल आठ सौ फिल्में बनती है लेकिन ये कोई नहीं देखता कि इनमें से 790 फिल्मों की कहानी एक जैसी होती है । सिर्फ इनके संगीत में ही गजब की ताजगी और अलौकिकता दिखाई पड़ती है । मुझे तो हमेशा ये लगता रहा है कि हिंदी फिल्मों में अगर वाकई कोई चीज मौलिक होती है तो वो है उसके गाने ।''[32]

1.3.2.6 अभिनय -

अभिनय किसी अभिनेता, अभिनेत्री और अन्य कलाकारों द्वारा किया जानेवाला वह कार्य है जिसके द्वारा वे किसी कथा को दर्शाते है, साधारणतः किसी पात्र के माध्यम से ! अभिनय का मूल ग्रंथ 'नाटयशास्त्र' माना जाता है, इसके लेखक भरतमुनि थे । 'अभिनय' का अर्थ है - 'पद या शब्द के भाव को मुख्य अर्थ तक पहुँचाना अर्थात् दर्शकों के हृदय में अनेक अर्थ या भाव भरना । साधारण अर्थ में किसी व्यक्ति या अवस्था का अनुकरण करना ही अभिनय कहलाता है । भरतमुनि ने चार प्रकार का अभिनय माना है - आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक ।'

फिल्मों में अभिनेता - अभिनेत्री और अन्य जो कलाकार होते हैं वे अपनी-अपनी भूमिका के अनुसार फिल्म में अभिनय करते हैं । अपने अच्छे अभिनय के द्वारा ये फिल्म में

जान डाल देते हैं, तो बुरा अभिनय करके फिल्म की जान भी निकालते हैं । कहने का तात्पर्य यह है कि फिल्म को उठाने या गिराने में 'अभिनय' की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका होती है । अभिनय सहज, सरल और स्वाभाविक होना चाहिए । आज के स्टारडम के जमाने में सिनेमा माध्यम की जादुई शक्ति का सर्वाधिक लाभ फिल्मस्टारों को प्राप्त होता है ।

1.3.2.7 नृत्य -

नृत्य मानवीय अभिव्यक्तियों का एक रसमय प्रदर्शन है । यह एक सार्वभौम कला है। भारतीय संस्कृति एवं धर्म भी आरंभ से ही मुख्यतः नृत्यकला से जुड़े रहे हैं । भारतीय नृत्य उतने ही विविध है जितनी हमारी संस्कृति, लेकिन इन्हें दो भागों में बाँटा जा सकता है - शास्त्रीय नृत्य तथा लोकनृत्य । प्रमुख भारतीय शास्त्रीय नृत्य है - कथ्थक, ओडिसी, भरतनाट्यम्, कुचिपूडी, मणिपुरी, कथकलि । लोकनृत्यों में प्रत्येक प्रांत के अनेक स्थानीय नृत्य है जैसे - महाराष्ट्र में लावणी, पंजाब में भांगडा आदि । पश्चिमी नृत्य प्रकार है - बैले नृत्य, जाज, हिप-हॉप, स्विंग, सालसा, बॉलरूम डान्स आदि।

'नृत्य' हिंदी फिल्मों का एक महत्वपूर्ण अंग रहा है । हिंदी फिल्मों में हम गीत संगीत और नृत्य का अनोखा मिलाफ देखते हैं। हिंदी फिल्मों में नाच-गाने की परंपरा बहुत पुरानी है। बदलते समय के साथ साथ हिंदी फिल्मों में 'नृत्य' का स्वरूप भी बदला । आज तो हम देखते हैं कि फिल्म के गाने में अभिनेता-अभिनेत्री के साथ दो चार सौ लोगों का हुजुम भी नाचता है । 'आयटम साँग' में भी हमें यह बात नजर आयेगी । इस प्रकार के गाने में तो रोमांचित कर देनेवाला नृत्य अविष्कार पेश किया जाता है । हाल ही में बॉलिवुड नृत्य की एक नई शैली लोकप्रिय होती जा रही है इसमें भारतीय शास्त्रीय और लोक नृत्य एवं पाश्चात्य शास्त्रीय तथा लोकनृत्य का समन्वय देखने को मिलता है ।

1.4 साहित्य और सिनेमा का महत्व -

साहित्य दुनिया की प्राचीन कला है और सिनेमा आधुनिक कला । मनुष्य की वृत्तियों के उदात्तीकरण और संवेदनशीलता के विकास में साहित्य की जो भूमिका है नव प्रौद्योगिकी के युग में सिनेमा की भी है । सिनेमा आज समाज को सबसे अधिक प्रभावित करनेवाला

कलारूप है । सिनेमा ने आधुनिक सामाजिक मूल्यों, आधुनिक वैचारिकी और कलात्मक सुरूचि के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है । ''कहा जाता है कि जिस देश का जैसा साहित्य होगा वैसा वहाँ का समाज बनेगा । आज के परिदृश्य में कह सकते हैं कि जिस देश का सिनेमा जैसा होगा वैसा वहाँ का समाज बनेगा ।''[33] जिस प्रकार साहित्य का समाज, संस्कृति, सभ्यता, इतिहास, भाषा आदि से गहरा रिश्ता है उसी प्रकार सिनेमा का भी है । समाज और राष्ट्र निर्माण में साहित्य की तरह सिनेमा की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है ।

सहित्य और सिनेमा हमारे जीवन की आवश्यकता है । साहित्य और सिनेमा के बिना हमारा जीवन नीरस हो जाएगा । साहित्य से हमें जीवन जीने की प्रेरणा और आनंद मिलता है। सिनेमा से हम मनोरंजन के साथ संदेश भी ग्रहण करते हैं। दोनों माध्यमों में समाज परिवर्तन की जबरदस्त ताकत है और समय-समय पर यह साबित भी हो चुका है कि साहित्य और सिनेमा ने किस कदर समाज को प्रभावित किया है ।अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने के लिए प्रेरित भी किया है । इस प्रकार सहित्य और सिनेमा का मानव जीवन में अत्याधिक महत्व है ।

1.4.1 साहित्य का महत्व -

साहित्य के महत्व को हम निम्न प्रकार से समझेंगे -

जीवन और साहित्य का सम्बन्ध जितना सूक्ष्म है उतनाही व्यापक भी है । शहर के सिमेंट के पक्के घरों में रहकर भी जिस प्रकार हम निसर्ग के बिना निर्जिव से रहते है उसी प्रकार विज्ञान की उन्नत दशा में भी साहित्य के अभाव में हमारा जीवन वास्तविक जीवन नहीं। आज के उत्तर आधुनिक युग में यह प्रश्न भी हमारे सामने उपस्थित होता है कि साहित्य का जीवन से क्या सम्बन्ध है और जीवन में उसका क्या उपयोग है ? अर्थशास्त्र, राजनीति, चिकित्सा विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, पर्यावरण विज्ञान आदि जिस प्रकार प्रत्यक्ष रूप से हमारे लिए उपयोगी है , क्या उसी प्रकार साहित्य का भी जीवन में कोई उपयोग हो सकता है और इसके द्वारा क्या हमारी भौतिक समस्याओं का यथार्थवादी समाधान मिल सकता है ? इसका उत्तर 'हाँ' है । अवश्य इसका उपयोग हो सकता है और हमारी समस्याओं का समाधान भी

मिल सकता है । मानव विज्ञान के क्षेत्र में बहुत आगे जा चुका है । हर क्षेत्र में हुई भौतिक प्रगति के कारण मनुष्य जीवन सुसह्य हो गया है । जमीन-पानी आकाश पर मनुष्य ने अपना अधिपत्य कायम कर लिया है, अब मनुष्य दूसरे ग्रहों पर भी जीवन की तलाश कर रहा है । आज सच्चे अर्थों में भौतिक रूप से दुनिया का पूरी तरह से विकास हो चुका है । विज्ञान के माध्यम से मनुष्य ने भौतिक उन्नति तो बहुत की परंतु क्या इसके माध्यम से वह मनुष्य को मानव के रूप में समझ सका है ? क्या वह सबके भीतर स्पंदित होनेवाली करुणा और प्रेम की अनुभूतियों को जान सका है ? यदि कुछ भी अंशों में हम हाँ कह सकतें है तो हमें मानना पडेगा कि उसका श्रेय साहित्य को है । ''विज्ञान के दानवी स्वरूप द्वारा सत्यानाश के मँडराते मेघों को कल्याण और प्रेम-भावना के झोंके से उड़ा सकने अथवा उनसे अमृत बूँदों की वर्षा कराने की सामर्थ्य साहित्य में ही है जो मानवता की पहचान के लिए हृदय का विस्तार करता है ।''[34]

साहित्य मानव जीवन की असफलता और निराशा की दशा में आशा का संचार करता है । वैयक्तिक सुख-दुःखों को साधारणीकरण द्वारा सामाजिक सुख-दुःख बना देना साहित्य की विशेषता है । अतः सामाजिक भावना और चेतना को बनाने-बिगाडने का काम साहित्य का ही है ।साहित्य मरणशील व्यक्तियों को भी अमर बनाकर सुरक्षित रखता है ।लेकिन शर्त यह है कि उन व्यक्तियों में महान गुणों का होना आवश्यक है । प्राचीन महापुरुषों को आज हमारे बीच जीते जागते रूप में प्रस्तुत करने का काम साहित्य ही करता है। अतः मानव गुणों को साकार और सजीव रूप में अमर बनानेवाला साहित्य अनुपयोगी कैसे हो सकता है ? जीवन में उसकी उपयोगिता को कैसे अस्वीकार किया जा सकता है ?

साहित्य भावों विचारों को साकार और सजीव बनाता है ।वास्तविक बात तो यह है कि शास्त्र और विज्ञान तो जीवन का सार निचोड़ देते हैं, लेकिन जीवन की यथार्थरूपी धारा को अखंडित और पूर्णरूप से प्रभावित करते रहना साहित्य का ही कार्य है । साहित्य की व्यापकता का अनुभव हम और प्रकार से भी करते है । किसी भी देश, जाति अथवा युग का साहित्य समूची मानवता को प्रभावित करने की शक्ति रखता है ।अतः देश, राष्ट्र, जाति, वर्ग

की संकुचित भावनाओं की परिधि से बाहर विश्वव्यापी मानवता की भावना के विकास के लिए साहित्य का कार्य महत्वपूर्ण है । साहित्य बाहरी दुनिया के साथ-साथ हमारे भीतर की मन की दुनिया का भी चित्रण करता है । और इसके द्वारा हमारे अन्तस् के रहस्य का उद्घाटन करता है । अतः साहित्य का बड़ा प्रभाव है । वह हमारे जीवन को हमेशा नई-नई प्रेरणाओं से भरता है । इसलिए साहित्य का हमारे जीवन में शाश्वत महत्व है ।

1.4.2 साहित्य और समाज -

साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है । साहित्य और समाज का घनिष्ठ सम्बन्ध है । आज मनुष्य ने जो प्रगति की है उसमें साहित्य का प्रमुख योगदान है । मानव और मानव समाज की विकास यात्रा में जिसे परंपरा कहा जाता है, उस परंपरा को निर्मित करने का, उसमें सुधार लाने का उसे वर्तमान के साथ जोडकर प्रासंगिक बनाने का कार्य साहित्य करता है । साहित्य मानव को मानवता सिखाता है । इस प्रकार मानव को मानव और ऐसे मानवों के समुह से निर्मित समाज निर्माण में साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान होता है। ''मनुष्य और पशु के बीच का भेद अच्छे बुरे का, उचित-अनुचित का, करणीय-अकरणीय का विवेक साहित्य के कारण है । समाज विज्ञान में मानव समाज की जो अवधारणा है, मानव समाज के जो तत्व है - रीति-रिवाज, खान-पान, रहन-सहन, उत्सव-त्योहार, भाषा आदि जो मानव समूह ने निश्चित विचार एवं चिन्तन प्रक्रिया के बाद निर्मित किये है वह मनुष्य को मनुष्येतर पशु-पक्षियों से अलगाते है । मानव ने समाज के विभिन्न क्षेत्रों में जो प्रगति की है वह शिक्षा, तकनीक, विज्ञान, खेलकूद, मनोरंजन, स्वास्थ , पर्यावरण, चिकित्सा पध्दति, अर्थशास्त्र, विविध संगठनों के रूप में किसी भी रूप में क्यों न हों । उस प्रगति के मूल में जो समझदारी है, मूल्य है, विचार है, चिन्तन है, उसे देखना चाहिए । मानव और समाज कैसे बेहतर बन सकता है यही मुख्य विचार रहा है ।''[35]

मानव और मानव समाज परिवर्तनशील है और परिवर्तन के दौर में हमें अतीत और वर्तमान को जोडकर जो अच्छा है उसे ग्रहण करने की और जो बुरा है उसे निर्भिक रूप से त्यागने की क्षमता और साहस दिखाना चाहिए तभी मानव समाज का भविष्य बेहतर हो सकता

है । निःसंदेह कहा जा सकता है कि साहित्य ही हमें अच्छे बुरे की पहचान करवाकर उपर्युक्त क्षमता को विकसित करने में सहायक हो सकता है ।

साहित्य समाज का केवल प्रतिरूप ही नहीं होता बल्कि उसमें समाज को सही दिशा देने की शक्ति भी होती है । राष्ट्र निर्माण के मूल्य होते हैं और सृजन की क्षमता होती है । ‘‘साहित्य के केंद्र में यदि राष्ट्र नहीं उसकी अस्मिता नहीं, उसकी अपनी जमीन नहीं और उसकी अपनी मूल्यगत पहचान नहीं तो उसे साहित्य नहीं, अपितु मनुष्य का गैर आवश्यक उत्पाद मात्र ही माना जाएगा ।’’[36] किसी भी समाज का उत्थान पतन बहुत कुछ साहित्य पर निर्भर है साहित्य में जो जीवनदायिनी शक्ति है, वह किसी औषधि में नहीं । यदि साहित्य न होता तो समाज और देश का कल्याण नहीं हो सकता था । साहित्य का मुख्य उद्देश्य आनंद द्वारा राष्ट्र और समाज का हित करना है । ‘‘साहित्य का मुख्य प्रयोजन हित साधन है । साहित्य मनुष्य के जीवन और जगत, आत्मा और परमात्मा, राष्ट्र और समाज, आनंद और विषाद, महानता और हिनता का एक सबल मापदंड है । साहित्य मनुष्य जीवन के अनुभवों तथा अनुभूतियों का विराट रूप है । साहित्य मानव विकास में जितना सहायक होता है उसी प्रकार समाज विकास में भी उसका दायित्व उतना अधिक होता है । समाज में साहित्य के माध्यम से विचार तरंगे प्रवाहित होती हैं । इन तरंगों से समाज की गतिविधियाँ प्रभावित होती हैं । साहित्य समाज में पाये जानेवाले गुण दोष उचित-अनुचित, न्याय-अन्याय आदि का निर्णायक होता है।’’[37]

साहित्य समाज की आधारशीला है । साहित्य समाज को जागृत रखता है । समाज में सुख-दुःख, शांति-अशांति, युध्द अनेकानेक स्थितियों की प्रेरक शक्ति साहित्य बन जाता है । साहित्य की प्रेरणा से समाज में आनेवाला परिवर्तन अधिक स्थायी होता है । साहित्य मानव-जीवन को संदेश उपदेश के साथ मनोरंजन और आनंद से भर देता है । साहित्य में साहित्यकार सामाजिक समस्याओं, विचारों तथा भावनाओं का चित्रांकन करता है । संवेदना और कलात्मकता की अभिव्यक्ति ही साहित्य है । साहित्य जहां समाज को प्रभावित करता है वहीं वह समाज से प्रभावित भी होता है । समाज के उथल-पुथल से साहित्य भी

प्रभावित होता है । संत कबीर ने अपने समय के बाह्य आडम्बरों, सामाजिक कुरीतियों के विरोध में अपनी आवाज उठाई । इसी तरह प्रेमचंद ने उपेक्षित वर्गों की ह्रदय विदारक समस्याओं का यथार्थ चित्रण अपने साहित्य में किया । इसके द्वारा समाज में एक नई स्फूर्ति, चेतना एवं जागृति प्रदान की । साहित्य के लक्षणों के बारे में प्रेमचंद ने लिखा है - ''हम साहित्य को केवल मनोरंजन और विलासिता की वस्तु नहीं समझते । हमारी कसौटी पर वहीं साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो । जो हम में गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाये नहीं ।''[38]

प्रेमचंद एक क्रांतिकारी कलाकार थे । साहित्य के द्वारा समाज का उध्दार एवं उत्थान करना उनका ध्येय रहा । आलोचक नंददुलारे वाजपेयी ने प्रेमचंदजी के साहित्यिक दृष्टिकोण के संबंध में लिखा है - ''प्रेमचंदजी समाज के वैषम्य से उत्पीडित मनुष्य की वकालत करना ही साहित्य का ध्येय मानते थे ।''[39] प्रेमचंद ने साहित्य में नयी चेतना, नयी प्रेरणा एवं प्रगति लाने का अधिक प्रयास किया । ''प्रेमचंद ने मानवता को दृढ करने के उद्देश्य से ही साहित्य का निर्माण किया है । उनकी आत्मा विशाल थी । वे व्यक्तिगत स्वार्थ से बहुत उपर उठकर समूचे राष्ट्र के हित की बात सोचते थे ।''[40] इससे पता चलता है कि प्रेमचंद ने हिंदी साहित्य में समाज का वास्तविक चित्रण किया ।

साहित्य समाज का दर्पण है, इससे अभिप्राय यही है कि साहित्य समाज का न केवल चित्र है अपितु समाज के प्रति उसका दायित्व निर्वाह भी है । समाज में फैली अनैतिकता, अराजकता, निरंकुशता को साहित्य बड़े ही मर्मस्पर्शी रूप में हमारे सामने लाता है । कहने का तात्पर्य यह है कि साहित्य और समाज एक-दूसरे पर आश्रित है, अवलम्बित है । जिस समाज की जैसी परिस्थितियाँ होंगी वैसा ही उसका साहित्य होगा । साहित्य समाज की प्रतिध्वनि, प्रतिछाया और प्रतिबिंब है । वर्तमान साहित्यकारों का यह कर्तव्य बनता है कि आज के दिशाहीन, स्वार्थलोलुप समाज को सही दिशा में लेकर जाए । वे ऐसे साहित्य का

निर्माण करें जिससे देश के आत्म-गौरव और गरिमा में बढोत्तरी हो । देश के सर्वांगीण विकास में साहित्य की भूमिका सर्वोपरि है ।

1.4.3 सिनेमा का महत्व -

सिनेमा के महत्व पर हम निम्न रूप से प्रकाश डालेंगे -

आज हम इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक के दौर से गुजर रहे हैं । दुनिया आज बहुत ही गतिमान बन चुकी है । विज्ञान के तरह-तरह के अविष्कारों ने दुनिया का चेहरा पूरी तरह से बदल दिया है । आज जीवन के हर क्षेत्र में इसका प्रवेश हो चुका है । बीसवी शती के शुरुआत में दुनिया इतनी गतिमान नही थी जितनी की आज दिखाई देती है । एक शताब्दी के फासले ने कितना कुछ बदल दिया है। आज का युग जनसंचार माध्यमों का युग है । रेडिओ, दूरदर्शन और सिनेमा जनसंचार के प्रमुख दृश्य-श्रव्य माध्यम है । आज हमारा जीवन हर पल दृश्य-श्रव्य जगत में साँस ले रहा है । "दृश्य-श्रव्य माध्यमों द्वारा झूठा-सच आसानी से स्थापित किया जा सकता है । अतः इन माध्यमों में निहित सम्मोहक शक्ति का प्रयोग कर भूमंडलीकरण के पक्षधर अपने मनचाहे विचारों को स्थापित करने के लिए इन माध्यमों पर पूरा नियंत्रण रखते है । साथ ही इन माध्यमों का प्रयोग अफीम के नशे की तरह समाज को स्वप्नील नींद सुलाने में करते हैं । जनसंचार माध्यमों में सबसे सशक्त माध्यम है सिनेमा।"[41]

इक्कीसवी सदी के दूसरे दशक में प्रवेश कर चुके विश्व पर आज यदि सबसे ज्यादा प्रभाव जिस माध्यम का है तो वह सिनेमा का ही है । हमारे रीति-रिवाज, खान-पान, रहन-सहन से लेकर चिंतन तक सिनेमा की गहरी पहुँच है । समूची मानवीय सभ्यता का यथार्थ जिस माध्यम से आज हमारे सामने उपस्थित है, उसमें सिनेमा की भूमिका अग्रणी है । सिनेमा का सौ साल का सफर हमारा-आपका और समूची मानव सभ्यता के विकास का सफर है । इस सफर ने देश की कई पीढ़ियों से साक्षात्कार किए है । सिनेमा ने एक उभरते हुए देश को आकार दिया है । भारतीय, हिंदी सिनेमा ने जनसामान्य के अवचेतन जीवन को संबोधन और स्थिर भावों को गति प्रदान की है । सिनेमा में बहुसंख्य समाज अपने समग्र तेवर, कलेवर, अपने संपूर्ण चरित्र और व्यवहार के साथ हजारों गीतों, संवादों, पात्रों, किस्से-

कहानियों में मौजूद है । ‘‘सिनेमा की सार्थकता उस बदलाव से जुडी होती है। जो उसके प्रभाव से व्यक्ति परिवार और समाज में दिखाई देता है । भारतीय सिनेमा, विशेषकर हिंदी सिनेमा इस कसौटी पर खरा उतरा है । बॉलिवूड ने हमें ही नहीं हमारे देश व समाज को अपने समय के हिसाब से फैशन करना सिखाया, सामाजिक बदलाव को स्विकार करने की समझ दी, जोर-जुल्म के खिलाफ इन्क्लाब का जज्बा दिया और हमारी भावनाओं को दृश्य-शब्द दिए ।’’[42]

भारतीय सिनेमा अपने शुरूआती दौर से ही लगातार परिवर्तनोन्मुखी रहा है । शुरू में सिनेमा का लक्ष्य समाज से जुड़ी समस्याओं को उठाना था । आजादी के बाद सिनेमा में राष्ट्रवाद का पुट आया । इसके साथ-साथ शासन और प्रशासन के खिलाफ विद्रोह की प्रवृत्ति भी जन्म लेने लगी थी । छोटे-मोटे बदलाव के साथ सिनेमा लगातार समाज को बदलने का कार्य कर रहा था । सिनेमा ने अपने उद्‌भव के प्रारंभ से ही कुप्रथाओं को खत्म करने का प्रयास किया । सिनेमा लोकप्रिय और रचनात्मक माध्यम है, वह वैचारिक मानस की निर्मिती में हमारी बहुत मदद करता है । वह प्रतीकों को गढता रचता है । कई विद्वान सिनेमा को आधुनिक युग का जादू कहते हैं । वह परंपरावादी एवं रुढिवादी समाज में परिवर्तन, जागरूकता और सुधार लाने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है । सिनेमा कला में एक तरह की व्यापकता है, जो करोडो लोगों के पास ले जाती है, और वह भी बहुत आसानी से । सिनेमा के इस व्यापक प्रभाव को हर कोई महसूस करता है । भारतीय सिनेमा मनोरंजन के साथ-साथ जागरूकता और सामाजिक परिवर्तन का भी महत्वपूर्ण काम कर रहा है ।समाज निर्माण में अन्य माध्यमों की तरह सिनेमा की भी एक उल्लेखनीय भूमिका है । सिनेमा अपने संदेश को जन-जन तक पहुँचाने का एक सशक्त माध्यम है । मास मीडिया में सबसे सशक्त माध्यम के तौर पर फिल्म का प्रभाव जनता पर सबसे अधिक पड़ता है, इसमें पढ़े-लिखे लोगों से लेकर गरीब जनता तक सम्मिलित होती हैं ।

यह सिनेमा ही है जिसने विश्व संस्कृति की आवधारणा को नये आयाम दिये है । जन संचार के सशक्त माध्यम के रूप में सिनेमा आज की सबसे बड़ी जरूरत है । दृश्य-श्रव्य

माध्यम की एक प्रमुख विधा के रूप में आज यह सर्वमान्य हो गई है ।सिनेमा को आज कला के रूप में स्वीकृति मिल चुकी है । ''सिनेमा को कला का दर्जा देकर उसे सभी कलाओं का सिरमौर कहा जाने लगा है ।''[43] अन्य कलाओं की तरह सिनेमा भी एक कला है जिसे हम यांत्रिक कला कह सकते है । ''सिनेमा में विज्ञान की शक्ति और कला की सुंदरता है जो बुध्दि को खाद्य देती है और ह्रदय को आंदोलित करती है ।''[44]

सिनेमा एक ऐसी कला है, अभिव्यक्ति का एक ऐसा माध्यम है, जिसमें साहित्यकला, चित्रकला, वास्तुकला, संगीतकला, नाटयकला, नृत्यकला सभी कलाओं का योग अपेक्षाकृत स्पष्टता से देखा जा सकता है । इसके बावजूद एक स्वतंत्र कला के रूप में उसकी अपनी विशेषता है, जिसकी उपेक्षा करने पर उसके मर्म तक पहुँचना सम्भव नहीं है । निःसंदेह सिनेमा को आज दृश्य-श्रव्य माध्यम की एक प्रमुख कला के रूप में स्वीकृति मिल चुकी है । उपरोल्लिखित सभी कलाएँ सिनेमा से प्रभावित हुई है । सिनेमा आज के समाज में संवहन का सर्वाधिक प्रभावशाली माध्यम है, जैसा कि यह शिक्षा और अन्तर्राष्ट्रिय सद्‌भावनाओं की वृध्दि का एक सबलतम साधन है । सिनेमा के सकारात्मक पक्ष का उद्देश्य एक अच्छे समाज का निर्माण, समाज के यथार्थ को सामने लाना है ।

1.4.3.1 सिनेमा और समाज -

मानव जीवन और समाज को प्रभावित करनेवाले विभिन्न माध्यमों में सिनेमा वह माध्यम है जो समाज को भी प्रभावित करता है और प्रतिबिम्बित भी करता है । भारत में सिनेमा को सौ साल हो चुके है । पिछले कई दशकों के फैलाव में कई पीढ़ियाँ सिनेमा में सक्रिय रही, उन्होंने अपने-अपने तरीके से सिनेमा को गढ़ा । सिनेमा में यह क्षमता पैदा की कि वह हमारी जीवन शैली का हिस्सा बन सके, क्योंकि सिनेमा जहाँ समाज को प्रतिबिम्बित करता है, वही निकलता भी उसी समाज से है । सिनेमा के भीतर समाज की मौजूदगी दिखती है, लोक दिखता है और उसमें सैंकडो साल का अपना समाज कई रूपों में प्रतिबिम्बित होता है । ''हिंदी सिनेमा समाज का एक प्रमाणित और वैज्ञानिक दस्तावेज भले न हो लेकिन एक समाज उसके भीतर से रिफ्लेक्ट होता है । हम सभ्यता के और समय के जिस बिंदु पर खड़े

है वहाँ सिनेमा हम पर असर डालता है । हमारी जिंदगी को गढ़ने-बिगाड़ने की कोशिश करता दिखता है । साथ ही दृश्य और श्रवण का यह माध्यम हमारी ज्ञानेन्द्रियों से अनुभूत नब्बे प्रतिशत सूचनाएँ मस्तिष्क तक पहुँचाने में सक्षम होता है । निश्चय ही फिल्में वह माध्यम हैं जो समाज में दर्पण, दीपक और दिगसूचक तीनों की भूमिका निभाती है ।''[45] यदि हम हिन्दी सिनेमा के परिप्रेक्ष्य में देखें तो स्वतंत्रता के बाद की अधिकांश फिल्में लाभ के मसौदे के लिए तैयार न होकर जन सरोकार और जन-पक्षधर मूल्यों को समर्पित थी । सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक संचेतना का निर्माण इनका मुख्य लक्ष्य था । ''जब हम भारतीय सिनेमा की बात करते हैं तो हमारे जहन में भारत की संस्कृति, सभ्यता, इतिहास और भाषा पहले आती है, क्योंकि भारतीय सिनेमा का इन सबसे बहुत गहरा नाता है । जैसे - जैसे वक्त बदल रहा है वैसे-वैसे सिनेमा का रूप बदल रह है, सभ्यता, संस्कृति, भाषा और इतिहास को सिनेमा जगत में बड़ी खूबसूरती से दर्शाया गया । रिश्तों की खूबसूरती तो कभी उलझे हुए रिश्ते भी फिल्मों में देखने को मिलते हैं, जो कहीं न कहीं हमारी निजि जिंदगी पर आधारित होते हैं, जिनकी कहानी हमें हमारी जिंदगी से जुडी हुई लगती है । बदलते हुए समाज का रूप-रंग और स्वरूप हमें भारतीय सिनेमा में बखूबी देखने को मिलता है ।''[46]

सिनेमा ने हमेशा भारतीय समाज को एक विस्तृत क्षितिज प्रदान किया है । सिनेमा ने अने समकालीन दौर की परिस्थितियों , चिंताओं और संघर्ष की अभिव्यक्ति पूरे आत्मविश्वास तथा दृढ़ता से की है । सिनेमा ने अक्सर समाज की दशा को दिशा देने का काम भी बखूबी किया है । फिर चाहे देश में व्याप्त सामाजिक रूढियों एवं कुरीतियों पर प्रहार करने की बात हो या बेरोजगारी, बेगारी, गरीबी, अशिक्षा की समस्या को प्रमुखता से सामने रखने की बात हो । ''फिल्म जगत ने फिल्मों के माध्यम से समाज में साम्प्रदायिक एवं जातिगत सौहार्द्र का वातावरण बनाने में भी अपनी भूमिका के साथ न्याय किया है, यहीं नहीं अनेक व्यवस्थाजन्य समस्याओं जैसे उग्रवाद, नक्सलवाद, आतंकवाद की तह तक पहुँचने तथा जनादेश को समझने में तथा सामंतवादी व्यवस्था, लालफीताशाही और भ्रष्टाचार के विरुध्द जनाक्रोश एवं विद्रोह को हथियार बना उनके विरुध्द में माहौल बनाने में, साथ ही साथ उनके संभावित समाधानों को दिखाने में भी फिल्म जगत ने अमुल्य योगदान दिया है ।''[47] फिल्मों ने देश के

हर वर्ग में भाईचारे और देशभक्ति की भावना को प्रसारित करने में भी अहम भूमिका निभाई है । बाजारीकरण, पाश्चात्य चलन एवं सामाजिक ताने-बाने के बदलाव ने परिवारों की टूट तो बढा दी है लेकिन समाज, परिवार एवं माता-पिता के महत्व को फिल्मों के माध्यम से बार-बार प्रमुखता से दर्शाकर फिल्म जगत ने पारंपरिक भारतीय मूल्यों को बचाकर रखने में भी मदद की है ।

फिल्मों ने आज जहाँ नारी को बाजार में खड़ा कर दिया है वही फिल्मों के माध्यम से ही नारी के महत्व एवं समाज में उसके विभिन्न स्वरूपों को महिमा मंडित करने के प्रयास भी किए गए हैं । इसके अलावा क्षेत्रीय या देशज भाषाओं एवं राष्ट्रभाषा हिंदी के उत्थान एवं उन्हें निकट लाने में फिल्में का अभूतपूर्व योगदान रहा है । इसी तरह गीत-संगीत, नृत्य को प्रश्रय देने तथा आगे बढ़ने में फिल्मों का विशेष योगदान रहा है । अतः सिनेमा ने समाज को बहुत कुछ दिया है इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता ।

1.4.3.2 साहित्य, सिनेमा और समाज -

यहाँ हम साहित्य, सिनेमा और समाज के अंतःसंबंध को निम्न रूप से जानने की कोशिश करेंगे -

साहित्य और सिनेमा समाज के अभिन्न अंग है ।दोनों ही कलाएँ समाज में जन्म लेती है और अंततः समाज को प्रभावित करती हैं । सिनेमा और साहित्य दोनों ही कला प्रकार है और दोनों कलाओं का उद्देश्य समाज की समस्याओं को चित्रित करना उन समस्याओं का समाधान अपनी कृति के माध्यम से समाज तक पहुँचाना है । ‘‘साहित्य और सिनेमा दोनों भी कलाओं का एक-दूसरे से परस्पर संबंध है । और यह दोनों विधाएँ साथ मिलकर समाज सुधार की भूमिका निभाती है तो निश्चित ही देश का सामाजिक स्तर विकसित होगा ।ऐसी स्थिति में आवश्यकता इस बात की है कि सरकारी एवं सामाजिक दोनों स्तरों पर ऐसी कोशिश की जानी चाहिए की सिनेमा आधुनिक तकनीक वाली साहित्य विधा के रूप में प्रतिष्ठित हो सके और समाज निर्माण में उसकी भी अहम भूमिका बने ।क्योंकि सिनेमा माध्यम का करोडो लोगों के जीवन पर असर पडता है।’’[48] लोग अपने जीवन के बहुत से

तौर तरीके सिनेमा से सीखते हैं । इसलिए ऐसे माध्यमों के प्रति थोडी भी अगंभीरता समाज का बहुत बड़ा नुकसान कर सकती है । इसके लिए हमें सचेत रहने की आवश्यकता है ।

साहित्य और सिनेमा दोनों समाज को प्रभावित कर उसमें परिवर्तन लाते हैं । भारतीय समाज में साहित्य की अपेक्षा सिनेमा का व्यापक प्रभाव समाज पर पड़ रहा है। भारतीय समाज आज के समय में सिनेमा से जितना प्रभावित है उतना अन्य किसी माध्यम से नहीं हैं। लेकिन मानव और मानव समाज के विकास में साहित्य की भूमिका विशेष रूप में दिखाई देती है । आज के विज्ञान और तकनीकी युग में भी साहित्य का महत्व कम नहीं हुआ है । साहित्यकार अपने साहित्य के माध्यम से समाज की समस्याओं, अच्छाइयों-बुराइयों को समाज के सामने रखता है । और उन समस्याओं से लड़ने का उपाय भी सात्यि के माध्यम से प्रस्तुत करता है । फिल्म निर्देशक भी वही करता है जो एक साहित्यकार करता है । दोनों के केंद्र में समाज ही होता है ।जिस प्रकार साहित्यकार समाज से प्रभावित होता है उसी प्रकार फिल्मकार साहित्य से प्रभावित होता है और समाज से भी ! एक अच्छा फिल्म निर्देशक साहित्य की श्रेष्ठ रचनाओं को पर्दे पर उतारकर समाज के सामने जिवंत दृश्यों का निर्माण करता है । फिल्म के जन्म से लेकर अब तक विश्व साहित्य की विविध भाषाओं की कृतियों पर फिल्में बनी हैं । उसमें भारतीय भाषाओं की कृतियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है ।

साहित्य और सिनेमा दोनों में जीवनोपयोगी उपदेश देने की क्षमता विद्यमान रहती है । साहित्य के बिना समाज अपूर्ण है और समाज के बिना साहित्य और सिनेमा अपूर्ण है । साहित्य और सिनेमा अपनी-अपनी जगह श्रेष्ठ है । साहित्य का ध्येय समाज का हीत है और फिल्म का ध्येय समाज को मनोरंजन प्राप्त कराना है, साथ ही समाज को आईना दिखाना भी है ।

1.5 निष्कर्ष -

इस प्रकार हम देखते है कि साहित्य और सिनेमा कला के दो अलग-अलग माध्यम है। सिनेमा और साहित्य दोनों भिन्न माध्यम होते हुए भी परस्पर पूरक है । उपरी तौर पर देखेंगे तो साहित्य और सिनेमा का स्वरूप एक-दूसरे से काफी भिन्न है । साहित्य शब्दों पर

आश्रित हैं तो सिनेमा दृश्य-श्रव्य माध्यम है । साहित्य कलम पर तो सिनेमा कैमरे पर निर्भर है ।

साहित्य की परिभाषाएँ और उसके तत्वों से उसके स्वरूप को समझने में थोड़ी बहुत मदद मिलती है लेकिन उससे साहित्य का स्वरूप पूरी तरह से स्पष्ट नहीं होता । वहीं बात सिनेमा की भी है । सिनेमा कला और विज्ञान का संम्मिश्रण है । सिनेमा का तकनीकी पक्ष और कला पक्ष समझने पर हमें सिनेमा के स्वरूप का परिचय होता है, लेकिन वह परिचय भी पर्याप्त नहीं है । ऐसा लगता है कि साहित्य और सिनेमा को परिभाषा में बाँधना बहुत ही मुश्किल कार्य है । किसी भी परिभाषा से हमें साहित्य और सिनेमा की सर्वांगीण जानकारी का पता नहीं चलता । इन दोनों कलाओं का स्वरूप इतना व्यापक है कि उनके स्वरूप को संपूर्ण रूप से स्पष्ट करने में मर्यादाएँ पड़ जाती है। फिर भी सहित्य और सिनेमा के स्वरूप को स्पष्ट करने की कोशिश इस अध्याय के अंतर्गत की गई है ।

साहित्य और सिनेमा के जो अंतर्निहित तत्व है उनके माध्यम से हमने दोनों कलाओं को समझने का प्रयास किया है । सिनेमा के तकनीकी पक्ष को अगर हम अलग रखें तो सिनेमा का कला पक्ष और साहित्य का घनिष्ठ सम्बन्ध है । दोनों में बहुत कुछ समानताएँ हमें नजर आती है । सिनेमा एवं साहित्य वस्तुतः दोनों ही कला विधाओं में प्रस्तुतीकरण के स्तर पर भले ही भिन्नता हो परन्तु कुछ मूलभूत बिंदूओं पर समानता दिखाई देती है । साहित्य में जहाँ विभिन्न विधाएँ-कहानी, उपन्यास, नाटक, कविता, आत्मकथा इत्यादि उसके स्वरूप को निर्धारित करती है, वहीं सिनेमा में साहित्य की विविध विधाओं एवं अन्य कला विधाओं का सुंदर समायोजन होता है ।

साहित्य और सिनेमा के महत्व को हमने समाज के परिप्रेक्ष्य में समझने का प्रयास किया तो सबसे महत्वपूर्ण जो बात सामने आयी वह यह कि साहित्य और सिनेमा ने समाज से शुरू से ही अपना अभिन्न नाता जोड़ लिया है । साहित्य और सिनेमा को हम समाज से अलग देख ही नहीं सकते । साहित्यकारों और फिल्म निदेर्शकों ने हमेशा समाज को आईना दिखाने का कार्य किया है ।समाज में पनप रही बुराईयों पर अपने-अपने माध्यम से कड़ा

प्रहार किया है । मनोरंजन के साथ साथ उपदेश का मर्म भी लोगों तक पहुँचाया है । दुःखी, पीडित लोगों के चेहरे पर मुसकान बिखेरने का प्रयास किया है । निराश मन में प्रेरणा और उत्साह भरने का कार्य किया है। समाज की विभिन्न समस्याओं को हमारे सामने रखकर अपने-अपने तरीके से उसका समाधान प्रस्तुत करने की चेष्टा भी की है ।

साहित्य और सिनेमा भले ही भिन्न माध्यम हो लेकिन दोनों के केंद्र में 'समाज' ही है। समाज की समस्याएँ है, समाज के प्रश्न है । सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक परिस्थितियों का प्रभाव ग्रहण करते हुए इन दोनों माध्यमों ने समय समय पर इसपर टिप्पणी की है । आम आदमी के दर्द को अभिव्यक्ति दी है और समाज की कुछ अनसुलझी समस्याओं का समाधान अपने माध्यम से करने का प्रयास भी किया है । भले ही कभी-कभी इनका तरीका कानूनन नहीं है, लेकिन समस्या का काल्पनिक समाधान पाकर थोड़ी देर के लिए क्यों न हो लोग आत्मिक आनंद का अनुभव करते हैं, यह भी कुछ कम नहीं है । कई बार साहित्य और सिनेमा से प्रेरणा पाकर लोगों ने व्यवस्था के खिलाफ आंदोलन भी किए हैं, इतिहास इस बात का गवाह है ।

साहित्य और सिनेमा की ताकत बहुत बड़ी है । समाज में इन दोनों माध्यमों का महत्व बहुत ज्यादा है । साहित्य, सिनेमा और समाज एक दूसरे से अभिन्न रूप में जुड़े है। साथ ही परस्पर पूरक भी है । समय समय पर एक दूसरे को प्रभावित करते है और प्रभावित भी होते है । साहित्य और सिनेमा ने समाज और राष्ट्र निर्माण में अपना अपना अनमोल योगदान दिया है । समाज का मार्गदर्शन किया है । इससे हमें इन दोनों माध्यमों की महत्ता का पता चलता है ।

संदर्भ सूची :

1) साहित्य और समाज - सम्पा. प्रा. मुकेशकुमार कांजिया, पृ. 32

2) हिंदी साहित्य कोश - सम्पा. धीरेन्द्र वर्मा,

3) साहित्यिक निबंध - गणपतिचन्द्र गुप्त, पृ. 01

4) वही, पृ. 04

5) वही, पृ. 08-09

6) वही, पृ. 10

7) भारतीय हिन्दी सिनेमा की विकास यात्रा - डॉ. देवेन्द्र नाथ सिंह, डॉ. वीरेंद्र सिंह यादव, पृ. (x)

8) सिनेमा अभिव्यक्ति का नहीं अन्वेषण का माध्यम है - फिल्मकार कमलस्वरूप ('हंस' हिंदी सिनेमा के सौ साल, फरवरी, 2013), पृ. 122

9) सिनेमा में शेक्सपियर - आथेलो से ओंकारा तक - विजय शर्मा ('हंस' हिंदी सिनेमा के सौ साल, फरवरी 2013), पृ. 134

10) समाज में सिनेमा - आलोक पांडेय ('मीडिया विमर्श', सिनेमा विशेषांक - 1, दिसंबर, 2012), पृ. 02

11) ये कहाँ आ गए हम, कहाँ जाएंगे - बसंतकुमार तिवारी ('मीडिया विमर्श', सिनेमा विशेषांक -1, दिसंबर 2012) पृ. 14

12) पत्रकारिता, सिनेमा और बाजार - डॉ. कैलाशनाथ पांडेय ('मीडिया विमर्श', सिनेमा विशेषांक -1, दिसंबर 2012) पृ. 25

13) शताब्दी मनाता भारतीय सिनेमा - शुचिता शरण ('मीडिया विमर्श', सिनेमा विशेषांक -1, दिसंबर 2012) पृ. 88

14) फिल्मों की पृष्ठभूमि और युवाओं पर प्रभाव - डॉ. गजेंद्र प्रताप सिंह, ('मीडिया विमर्श', सिनेमा विशेषांक -2, मार्च 2013) पृ. 37

15) भारतीय सिनेमा का अंतःकरण - विनोद दास, पृ. 07

16) पश्चिम और सिनेमा - दिनेश श्रीनेत, पृ. 26

17) वही, पृ. 48

18) वही, पृ. 69

19) How to write film stories - Richard Harison, page 37

20) सिनेमा के सौ बरस - सम्पा. मृत्युंजय (जो फिल्म बनानी हो - अमित सेन), पृ. 50

21) वही, पृ. 47

22) वही, पृ. 47

23) हिंदी साहित्य और सिनेमा - विवेक दुबे, पृ. 20

24) सिनेमा के सौ बरस - सम्पा. मृत्युंजय (जो फिल्म बनानी हो - अमित सेन), पृ. 51

25) वही, पृ. 51

26) वही, पृ. 52

27) वही, पृ. 49

28) वही, पृ. 49

29) वही, पृ. 52

30) इलेक्ट्रॉनिक मीडिया लेखन - प्रो. रमेश जैन, पृ. 185

31) सिनेमा के बारे में - नसरीन मुन्नी कबीर, पृ. 37, 38

32) वही, पृ. 125

33) साहित्य और सिनेमा : बदलते परिदृश्य में संभावनाएँ और चुनौतियाँ - सम्पादिका डॉ.शैलजा भारद्वाज, पृ. 'भमिका से'

34) काव्यशास्त्र - डॉ. भगीरथ मिश्र, पृ. 02

35) साहित्य और समाज - संपादक प्रा. मुकेशकुमार कांजिया, पृ. 11

36) संपादकीय - प्रो. त्रिभुवननाथ शुक्ल, ('साक्षात्कार', अप्रैल 2014), पृ. 06

37) साहित्य में युग चेतना का महत्त्व - वी. गोविंद ('विवरण', मार्च, 2014), पृ. 09

38) साहित्य का उद्देश्य - प्रेमचंद्र, पृ. 26

39) प्रेमचंद स्मृति - अमृतराय, पृ. 48

40) प्रेमचंद जीवन, कला और कृतित्त्व - हंसराज रहबर, पृ. 264

41) श्रव्य-दृश्य बनाम नवसाक्षरता - किशोर वासवानी ('अनभै' मीडिया विशेषांक, 2006), पृ. 31

42) तो क्यों न देखें फिल्में बार-बार - धनंजय चोपडा ('मिडिया विमर्श' सिनेमा विशेषांक, 2 मार्च 2013) पृ. 13

43) सिनेमा पढने के तरीके - विष्णू खरे, पृ. 'फ्लैप से'

44) आधुनिक पत्रकरिता - डॉ. अर्जुन तिवारी, पृ. 222

45) भारतीय हिन्दी सिनेमा की विकास यात्रा - डॉ. देवेन्द्र नाथ सिंह, डॉ. वीरेंद्र सिंह यादव, पृ. 57, 58

46) जिंदगी में भी डाला असर - खुशनुमा परवीन ('मीडिया विमर्श', सिनेमा विशेषांक - 2, मार्च, 2013) पृ. 30

47) सामाजिक दायित्त्व भी निभाना जरूरी - सुमित द्विवेदी ('मीडिया विमर्श', सिनेमा विशेषांक - 2 मार्च, 2013) पृ. 54

48) साहित्य और सिनेमा - संपादक प्रा. पुरूषोत्तम कुंदे, पृ. 301